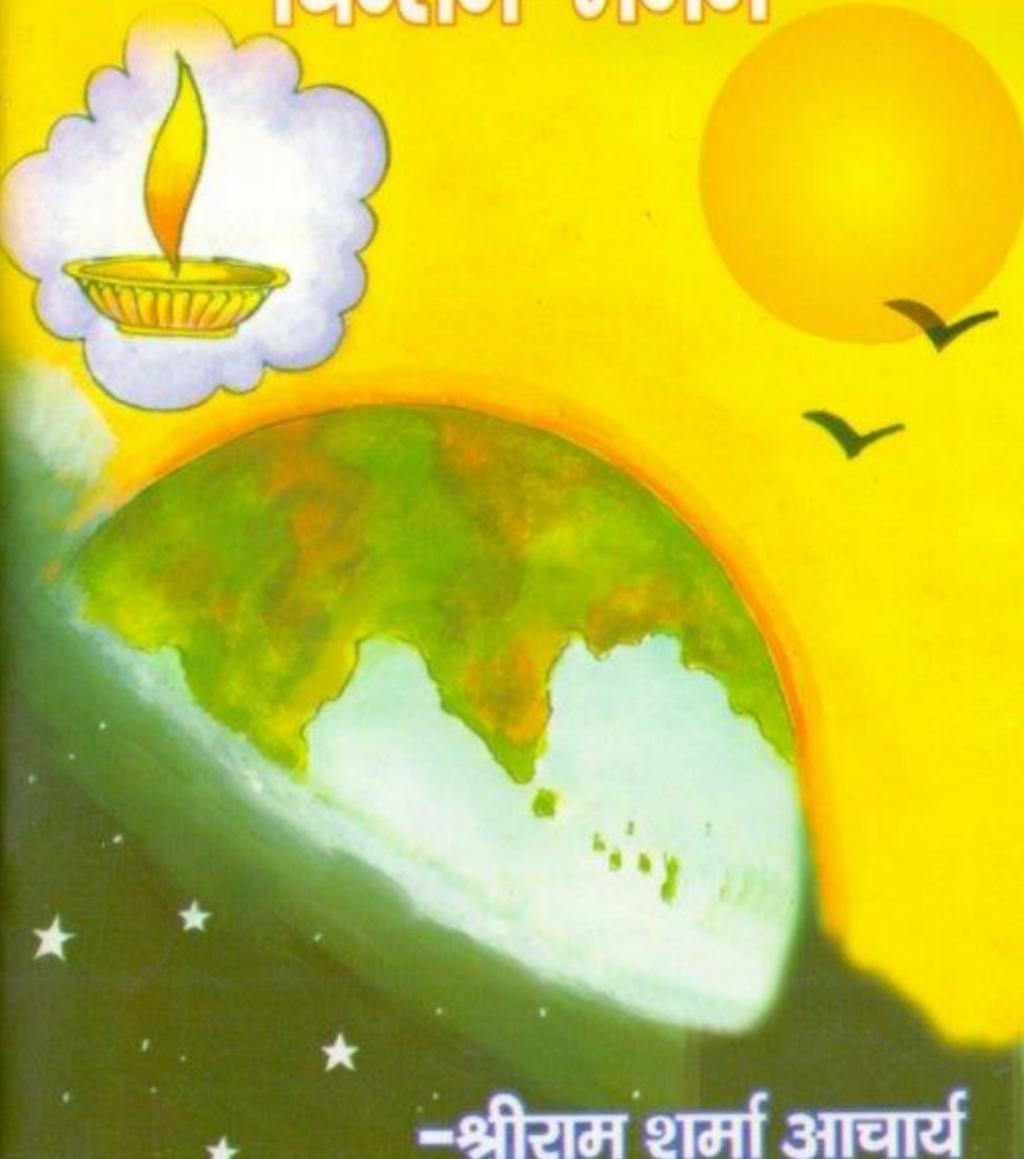


# स्वाध्याय, सत्संग और विज्ञन-मनन



-श्रीराम शर्मा आचार्य

# स्वाध्याय, सत्संग और चिंतन-मनन



लेखक :  
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :  
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा  
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९  
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९  
फैक्स नं०- २५३०२००

२०१०

मूल्य : १०.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

---

मनुष्य की वास्तविक शक्ति ज्ञान है, पर वास्तविक ज्ञान क्या है ? वास्तविक ज्ञान का लक्षण तो वह स्थिर बुद्धि और उसका निर्देशन है, जिसे पाकर मनुष्य अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, असत्य से सत्य की ओर, अशांति से शांति की ओर और स्वार्थ से परमार्थ की ओर उन्मुख होता है। स्वाध्याय, सत्संग एवं चिंतन-भनन की त्रिपदा साधना ही उस ज्ञान की सिद्धि का उपाय है।

---

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

# जागृत जिज्ञासा एवं सतत स्वाध्याय व्यक्तित्व-विकास के अमोघ उपाय

"शीघ्र मृत्यु से बचना है तो मानसिक व्यायाम कभी भूलकर भी बंद न करें। मानसिक व्यायाम अर्थात् स्वाध्याय का अर्थ कुछ भी पढ़ना नहीं। जो विषय आप नहीं जानते उसका अध्ययन कीजिए। किसी ऐसे विषय का अध्ययन कीजिए, जिससे आपको अपनी खोपड़ी खुजानी पड़े।"

यह शब्द अमेरिका के ६७ वर्षीय डॉ० श्वार्टज के हैं। डॉ० श्वार्टज का कहना है कि मनुष्य की मृत्यु वृद्धावस्था के कारण नहीं होती, मानसिक संस्थान की क्रियाशीलता के रुकने के कारण होती है। जो लोग निरंतर क्रियाशील रहते हैं, उनकी आयु लंबी होती है। यही नहीं वे अपने अनेक शारीरिक विकारों को भी दाब बैठते हैं, उन पर शारीरिक त्रुटियों का भी दुष्प्रभाव परिलक्षित नहीं होने पाता।

डॉ० श्वार्टज के मत के अनुसार अपने देश के ऋषियों, महर्षियों के जीवन का अध्ययन कर तो विश्वास हो जाएगा कि उनके दीर्घायुष्य का कारण उनकी मनोचैतन्यता ही थी। शारीरिक श्रम के साथ में मानसिक दृढ़ता और विचारशीलता के कारण वे सैकड़ों वर्षों की आयु हँसते हुए जीते थे।

अपने कथन की पुष्टि में डॉ० श्वार्टज ने एक ८४ वर्षीय अमेरिकन व्यापारी को प्रस्तुत किया, इस व्यापारी में अपने व्यापार के लिए नई-नई बातें खोजने की क्षमता है। यह अपने मस्तिष्क को सदैव कुरेदता और विचारता रहता है; जब कभी विचार ढीले पड़ जाते हैं, तब वह पढ़कर फिर सोचने के लिए नए विचार पैदा कर लेता है। विचारों की शाखाएँ-प्रशाखाएँ फूटती रहें, इसके लिए उसके जीवन में कर्म का समन्वय है अर्थात् वह जितना सोचता-विचारता है, उतना ही क्रियाशील भी है।

व्यापारी से पूछा गया—“आपको शारीरिक शिकायत तो नहीं है ?” इस पर उसने हँसकर उत्तर दिया—‘शिकायत होती तो डॉक्टर को न दिखाते आप देख लें, आप तो डॉक्टर हैं, कोई शिकायत होगी तो आपकी पकड़ से बाहर थोड़े ही जा सकेगी।’

डॉक्टरों ने परीक्षा की। डॉक्टर आश्चर्यचकित थे कि संसार भर की तमाम बीमारियाँ उसके शरीर में भरी पड़ी हैं, लेकिन उसके काम की तल्लीनता और विचारों की सजगता के कारण शरीर का विष जलता रहता है और बीमारियाँ होते हुए भी उसे चारपाई पकड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बीमारियों की ओर तो उसका कभी ध्यान भी नहीं गया। वह अपनी आयु के किसी भी व्यक्ति से ज्यादा काम करते हैं, व्यवसायिक कार्यों से संबंधित अध्ययन के बाद भी ग्रह-नक्षत्रों की खोज, जीवात्मा परमात्मा संबंधी जानकारियाँ, प्रकृति और मनुष्यगत आश्चर्यों, चमत्कारों को पढ़ने के लिए वे कुछ न कुछ समय प्रतिदिन निकालते हैं। इन जिज्ञासाओं के कारण न तो उनका मस्तिष्क ठप्प पड़ता है न क्रिया-कल्पाप।

डॉ० फ्रेडरिक श्वार्टज अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन के अध्यक्ष हैं। जीवन के सबसे बड़े आश्चर्य मृत्यु की खोज में उनकी गहन अभिरुचि है। उसे रोक सकना तो भौतिक दृष्टि से शायद ही कभी संभव हो पर यदि पौराणिक आख्यान सत्य हैं, जैसा कि अब प्रमाणित भी हो रहा है, तो आयु को हजार वर्ष तक खींच ले जाने की संभावनाएँ अगली शताब्दियों में ही सत्य सिद्ध हो सकती हैं।

उसके लिए डॉ० श्वार्टज ने जो फारमूला बताया है, वह ऊपर दे दिया गया है। आश्चर्यों की खोज के प्रति हमारी जिज्ञासाएँ जितनी तीव्र होंगी और शारीरिक दृष्टि से जब तक क्रियाशील बने रहेंगे, मृत्यु तब तक दूर ही रहेगी, भले ही शरीर के कई कल-पुर्जे काम करना भी बंद कर दें।

### विकास की पृष्ठभूमिका—जिज्ञासा—

पाश्चात्य देश पिछली शताब्दी से विज्ञान में तेजी से प्रगति करते जा रहे हैं। हजारों प्रकार के ऐसे उपकरणों—तत्त्वों का उन्होंने अन्वेषण किया जो आज लोगों को बड़े आश्चर्य के रूप में दिखाई दे रहे हैं। विज्ञान की उन्नति ने ही इन देशों को धन और साधन संपत्ति

बना दिया है। इसका श्रेय किसी दैवी शक्ति को न देकर उन लोगों की सूझ-समझ को देना ही उचित लगता है।

उन्होंने इतनी उन्नति कर ली और हम अभी निम्न श्रेणी में ही पड़े हैं। यह एक प्रश्न है जो हमें बार-बार कारण की खोज करने को विवश करता है। हमारे देश में प्राकृतिक साधनों की कोई कमी नहीं, मनुष्यों का अभाव भी नहीं है। लोग चाहें तो अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचे उठकर स्वयं भी उस वैज्ञानिक प्रगति और धन संपन्नता की श्रेणी में पहुँच सकते हैं, जो पाश्चात्य देशों को उपलब्ध है। किंतु कुछ कमी है जो हमारी प्रगति में बाधक है और हमें वर्तमान स्थिति से ऊँचे नहीं उठने देती हैं।

वैज्ञानिक प्रगति पाश्चात्य देशों की विरासत नहीं है। भारतवर्ष किसी समय उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचा था इससे यह स्पष्ट है कि कोई भी देश इस क्षेत्र में ऊँचे न उठ पाने के लिए प्रतिबंधित नहीं है। ज्ञान हो तो एक से एक बढ़कर आविष्कार और अन्वेषण यहाँ भी किए जा सकते हैं और हर तरह की भौतिक समृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी चेष्टा करना धर्म की दृष्टि से भी कुछ बुरा नहीं है। भौतिक समुन्नति भी अध्यात्म का ही एक अंग है। हमारा आर्ष इतिहास यह बताता है कि जिन दिनों यहाँ धर्म-तत्त्व का जागरण पूर्णता की स्थिति में था उन दिनों भौतिक दृष्टि से भी यह देश आज के अमेरिका, ब्रिटेन आदि से भी बढ़-चढ़ कर था। परिष्कृत अध्यात्म का लक्षण है—भौतिक समृद्धि। धर्म उसके बिना अधूरा है। साधनों के अभाव में अध्यात्म फल-फूल भी तो नहीं सकता।

जब कोई देश नया आविष्कार करता है तो उस पर हमें भी कौतूहल नहीं होता। रेडियो, टेलीविजन, परमाणु शक्ति, ऊर्जा-शक्ति, चंद्रमा की ओर प्रयाण आदि अनेकों बातें जब हमारे सामने आती हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है, कौतूहल पैदा होता है। किंतु हमारा कौतूहल बाह्य मात्र है। हम केवल कहने-सुनने तक सीमित हैं। किसी वस्तु के प्रति आश्चर्य प्रकट कर देने मात्र से वैज्ञानिक प्रगति की आवश्यकता पूरी नहीं होती हमारा कौतूहल दरअसल आंतरिक होना चाहिए तभी सच्चे ज्ञान, आविष्कार और भौतिक समृद्धि की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। कोरी शाब्दिक अभ्यर्थना किसी काम की नहीं होती। किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आंतरिक

कौतूहल आवश्यक है। उस वस्तु की तह तक पहुँचकर सारी जानकारी प्राप्त कर लेना अधिक महत्वपूर्ण होता है।

वैज्ञानिक विकास का पूर्व इतिहास यह है कि लोगों के मन में यथार्थ के प्रति जिज्ञासा पैदा हुई। इससे वस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया चल पड़ी। इस प्रकार का ऐनालिसिस जितना बढ़ा उतना ही यथार्थ की शक्ति और दक्षता का ज्ञान होता गया और उस बढ़े हुए ज्ञान के कारण तरह-तरह के आविष्कार हुए। आविष्कार परिणाम है, जिज्ञासा या आंतरिक कौतूहल इसका जन्मदाता। वस्तु के प्रति आश्चर्य का भाव पैदा न होता तो परमाणु शक्ति का पता भी न चला होता और आज के बढ़ते हुए वैज्ञानिक आविष्कारों का कहीं नाम-निशान भी नहीं होता।

ताप, चुंबक, विद्युत, शब्द और पदार्थ के अनेक सूक्ष्मतम रहस्यों का ज्ञान और उन सिद्धांतों के आधार पर वैज्ञानिक यंत्रों का निर्माण तभी संभव हुआ जब लोगों ने वस्तु के रहस्य को जानने का प्रयत्न किया और तभी वे इतनी उन्नति कर सके।

पाश्चात्य देशों के लिए यह कोई नई बात नहीं है। ऋषियों का जीवन इन खोजनों में इतना रत रहता है कि उन्हें अपने सुखों और सुविधाओं में भी कटौती कर समय निकालना पड़ता था। खाने की चिंता से मुक्त होने के लिए ऋषि, पीपल के फलों पर, खेतों पर गिरे हुए अन्न के दानों पर ही अवलंबित रह जाते थे और तत्परतापूर्वक ज्ञान की शोध में लगे रहते थे। “वेद” का प्रादुर्भाव कोई सामान्य घटना नहीं है, उनमें विश्व का गूढ़तम दर्शन और विज्ञान भरा हुआ है। उन्हें कोई व्यक्ति एक अंश में भी जान जाए तो अतुलित शक्ति, शौर्य और साधनों का स्वामी बन जाए। इतनी बड़ी खोज यों ही नहीं हो गई ऋषियों ने जीवन-दर्शन और प्रकृति को बहुत बड़े आश्चर्य के रूप में देखा इसी से प्रेरित होकर वे ‘वेद’ की शोध कर सके।

मानव जीवन चूँकि बहुत अधिक मात्रा में इस पृथ्वी पर बिखरा पड़ा है इसलिए उसके प्रति लोगों में आश्चर्य का भाव नहीं है। शारीरिक, तृष्णाएँ, लालसाएँ, ऐषणाएँ भी इस मार्ग में बाधक हैं। मानव जीवन की विपुलता और इच्छाओं, लालसाओं में व्यस्त रहने के कारण मनुष्य आत्म-रहस्य जानने को भी तत्पर नहीं होता इसलिए वह अपने आप में भी एक पहली बना हुआ है। इसके प्रत्येक

क्रिया-कलाप में भ्रम है, भूल है, अनात्मिकता है। यह सब इसलिए ही है कि लोगों में अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति कौतूहल का भाव नहीं है। भौतिक पदार्थों के प्रति कौतूहल से जो विज्ञान बना उससे भौतिक समृद्धि हुई। जिस आत्म ज्ञान से शक्तियों का प्रकाश होता है उससे आध्यात्मिक बल समुत्पन्न होता है। इस स्थिति में पहुँचकर ही मानव जीवन का लक्ष्य पूरा होता बताया जाता है। पर इन दोनों ही स्थितियों के लिए जन-मानस में जिज्ञासा का प्रवेश होना आवश्यक है। मनुष्य की भावनाओं में ज्ञान और विकास की भूख मिटती है तो वह बिलकुल आलसी, अशक्त, दीन-हीन एवं क्लेशपूर्ण परिस्थिति में गिर जाता है। उन्नति के द्वार बंद हो जाते हैं और वह मनुष्य जीवन के उद्देश्य से च्युत हो जाता है। उनकी प्रवृत्तियाँ अधोगामी हो जाती हैं और वे सब प्रकार के विकास से वंचित रह जाते हैं।

आज इस देश की स्थिति ठीक ऐसी ही है। भौतिक पदार्थों के प्रति उनकी जिज्ञासा का प्रभाव यह है कि हमारी भौतिक समृद्धि अवरुद्ध है और स्थूल देह में मानिष्ट प्राण के प्रति कौतूहल नहीं है इसलिए अध्यात्म ज्ञान का एक महत्वपूर्ण अध्याय अंधकार में पड़ा है। लोग जिस स्थिति में हैं उससे तनिक भी आगे बढ़ने की इच्छा नहीं करते। ज्ञान के क्षेत्र में जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, शोध के लिए जो सांसारिक वासनाओं को मारना पड़ता है, उससे लोग डरते से रहते हैं। इसलिए हमारी विकास की प्रक्रिया अधमुँदी पड़ी है। राष्ट्र का आविष्कृत ज्ञान भी इसीलिए प्रभावशील होते हुए भी निष्क्रिय-सा, अनुपर्यागी-सा पड़ा हुआ है।

अब जब हम विकास के लिए अग्रसर हो रहे हैं तो आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों क्षेत्रों में हमारी जिज्ञासाएँ समान रूप से जागृत होनी चाहिए। जब तक किसी वस्तु के प्रति सच्चे हृदय से आकर्षित नहीं होते, तब तक उसका संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता पर जिस वस्तु में रुचि होती है उसके उन पहलुओं पर हमारा मन, हमारी कल्पनाएँ दौड़ती हैं और उससे संबंधित सारी जानकारी हमें उपलब्ध करा देती है। बढ़े हुए ज्ञान का उपयोग किसी भी दिशा में किया जा सकता है। आत्मिक ज्ञान की अधिकता से सद्गुणों का और आंतरिक सुख का अभाव दूर होता है। उसी तरह भौतिक ज्ञान की अधिकता से साधनों का लाभ प्राप्त होता है और

सांसारिक सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। यह निश्चित है कि ज्ञान ही मनुष्य के विकास का मूल तत्व है और जागरण के लिए जिज्ञासा आवश्यक है।

### जिज्ञासा जगाइए और अपना ज्ञान भंडार भरिए—

जिज्ञासा मानव जीवन के विकास का बहुत बड़ा आधार है। जो जिज्ञासु हैं, जानने को उत्सुक हैं वही जानने का प्रयत्न भी करेगा। जो जिज्ञासु नहीं उसे जड़ ही समझना चाहिए। पेड़-पौधे यहाँ तक पशु-पक्षी भी कुछ नया जानने के लिए कभी उत्सुक नहीं होते। जिज्ञासा की विशेषता ही मनुष्य को पशुओं से भिन्न करती है। वैसे जिज्ञासा के अभाव में मनुष्य भी अन्यों की तरह दो हाथ-पैर वाला पशु ही है।

जिज्ञासा में स्वयं अपनी एक ज्ञान शक्ति होती है। जिज्ञासा के जागते ही किसी बात को जान सकने का सहायक ज्ञान स्वयं ही विकसित होने लगता है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा गहरी होती जाती है ज्ञान भी बढ़ता जाता है, मनुष्य की जिज्ञासु वृत्ति ने ही उसे दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं अन्वेषक बनाया है।

यदि जिज्ञासा न होती तो, मनुष्य में इस प्रकार के प्रश्न ही क्यों जागते कि वह क्या है ? यह विराट् विश्व क्या है ? इसका रचयिता कौन है ? और इस संपूर्ण प्रपञ्च का प्रयोजन क्या है ? इस सबका आदि कहाँ से प्रारंभ होता है ? अंत कहाँ होगा ? और क्यों इन प्रश्नों का उत्तर खोजने में परिश्रम करता। जिज्ञासा के अभाव में, मनुष्य आज जिस ज्ञान पूर्ण स्थिति में आया हुआ है, कभी नहीं आ पाता। यह जिज्ञासा की ही प्रेरणा है कि आज मनुष्य का ज्ञान भंडार इतना विशाल हो सका है और आगे इस ज्ञान भंडार में जो कुछ वृद्धि होगी उसका भी मुख्य हेतु जिज्ञासा होगी।

आज यदि मनुष्य की जिज्ञासा-वृत्ति कुंठित अथवा तिरोहित हो जाए तो उसका ज्ञानाभिमान जहाँ का तहाँ ठप्प हो जाए और तब ग्रह-नक्षत्रों का वास्तविक अस्तित्व क्या है इसका पता लगाने की दिशा में चलते हुए प्रयास जहाँ के तहाँ रुक जाएँ और तब आगे भी कभी यह जान सकने की संभावना सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो जाए कि आखिर इन मंगल, चंद्र अथवा बुध आदि ग्रहों पर क्या है ? इनका वास्तविक अस्तित्व क्या है ? क्या इन पर भी उसी

प्रकार जीवन का अस्तित्व हो सकता है, जिस प्रकार कि हमारी पृथ्वी पर ? यदि इनमें जीवन है तो वहाँ के जीव किस प्रकार के हैं ? उनका कार्य क्या रहता है ? वे हम मानवों जैसे कर्म प्रधान मर्त्य हैं अथवा भोग प्रधान अमर्त्य ? क्या हम मानवों की भाँति वहाँ पर भी मनुष्य पाए जाते हैं और क्या वे हमारी तरह ही आत्मा परमात्मा और पुरुष प्रकृति पर विचार करते हैं ? उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या हो सकता है ? उनकी साधन पद्धति क्या होगी ? मनुष्य की भाँति उनके परम लक्ष्य मोक्ष की क्या परिभाषा होगी उनकी भाषा क्या होगी और न जाने उनका साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, कला-कौशल शिल्प एवं रहन-सहन किस प्रकार का होगा ? उसमें और हम भूमिवासियों में क्या समानता और क्या अंतर होगा ?

आज मनुष्य का अंतरिक्ष ज्ञान जिस सीमा तक पहुँच चुका है जिज्ञासा के अभाव में वह उसके आगे फिर न जा सकेगा। आज जिस अपु शक्ति को मनुष्य ने खोजकर आज्ञारत बना लिया है कल इस महाशक्ति को वह आगे बढ़ा सकता है ऐसी आशा नहीं रह सकती।

यही नहीं कि जिज्ञासा के अभाव में मनुष्य का बढ़ता हुआ ज्ञान जहाँ का तहाँ रुक जाएगा बल्कि वह धोरे-धीरे नष्ट भी हो जाएगा और आज का विकसित मनुष्य कुछ ही दिनों में फिर से कोरमकोर हो जाएगा। जिज्ञासा के आधार पर ही तो मनुष्य एक-दूसरे से ज्ञान ग्रहण कर आगे बढ़ता है। जब किसी में कुछ जानने, सीखने अथवा ग्रहण करने की उत्सुकता ही न रहेगी तब वह क्यों व्यर्थ में किसी विषय पर माथा-पच्ची करेगा ?

आज भी जिनमें जिज्ञासा का प्राधान्य होता है। ज्ञान के क्षेत्र में वे ही आगे निकल पाते हैं। यदि जिज्ञासा की मात्रा में अंतर न होता तो सभी एक जैसे समान स्तर के ज्ञानी, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कवि, कलाकार, शिल्पी एवं वैज्ञानिक व अन्वेषक होते। यदि जिज्ञासा के अभाव में यह सब संभव हो सकता तो संसार का प्रत्येक मनुष्य विद्यावान् एवं वैज्ञानिक हो सकता था। मनुष्य में ज्ञान का कम-ज्यादा होना भी जिज्ञासा की मंदता अथवा तीव्रता पर ही निर्भर करता है।

जो जिज्ञासु हैं वही गहरे पैठता है। जिज्ञासु की दृष्टि सामान्य लोगों से कुछ अधिक पैनी और खोजक होती है। किसी एक दृश्य

अथवा घटना को कोई सामान्य व्यक्ति देखता है तो वह उसके लिए एक साधारण बात होती है किंतु जब उसी विषय पर किसी जिज्ञासु व्यक्ति की दृष्टि पड़ जाती है तो वही साधारण बात कोई दार्शनिक अथवा कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति पाकर असाधारण बन जाती है। जिज्ञासु के लिए संसार की हर घटना एक रहस्य एवं एक महत्त्व लिए रहती है। एक रसोइये के लिये भाप से बटलोई का ढक्कन उछलना नित्य-प्रति की सामान्य बात रहती है किंतु स्टीविंसन के लिए भाप से ढक्कन का उठना-गिरना एक असाधारण रहस्य की बात बनकर इंजिन के आविष्कार का हेतु बनी ! एक माली के लिए पेड़ से फल गिरना सामान्यतम् घटना है किंतु उसके आधार पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धांत के आदि गुरु 'न्यूटन' के लिए वह असाधारण महत्त्व की बात थी। इतनी असाधारण कि आगे चलकर उसी आधार सूत्र के बल पर अधर में लटके इस ब्रह्मांड के हर ग्रह-नक्षत्र की चाल तथा अवस्थन का रहस्य मालूम कर लिया गया।

जिज्ञासा ज्ञान की महान् जननी है। जिसने जो कुछ जानना चाहा उसे जानकर ही छोड़ा। प्रत्यक्ष में जानने का कोई सूत्र न होने पर भी जिज्ञासा मनुष्य को स्वयं से उसी प्रकार सूत्र निकाल कर दे देती है जिस प्रकार मकड़ी अपने अंतर से जाल तंतु निकाल लेती है। गहन से गहन अपराधों को, कोई आधार न होने पर भी जासूस जिज्ञासा की तीव्रता के बल पर ही पता लगा लेते हैं। जिज्ञासा के बल पर ही मनुष्य ने शरीर विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगोल एवं खगोल विद्याओं का ही नहीं, अपने आंतरिक एवं आत्मिक रहस्यों को भी हस्तगत कर लिया है। मनुष्य की जिज्ञासु बुद्धि उस चीटी की तरह सतत प्रयत्निका होती है, जो सात परदों में छिपी हुई शक्कर को खोजकर ही दम लेती है। जिज्ञासु बुद्धि का सहज गुण होता है कि जब तक वह लक्षित रहस्य को खोज नहीं लेती, संतुष्ट नहीं होती। दिन-रात उसके पीछे लगी रहती है।

एक ही मिट्टी से बने हुए एक जैसे हाथ-पैर समान स्थिति के मनुष्यों में से जो आगे निकल गया है, ऊँचा चढ़ गया है और दूसरा जहाँ का तहाँ ही रह गया है, उसका कारण जिज्ञासा का भाव ही होता है। निश्चय ही आगे निकल जाने वाले व्यक्ति में जिज्ञासा की प्रबलता रही होती है, जबकि फिसड़डी में उसका अभाव होता है। जो

जिज्ञासु हैं, कुछ जानना और सीखना चाहता है, वह तो जाने सीखेगा ही और उसी आधार पर आगे भी बढ़ेगा। जिसमें कुछ सीखने तथा जानने अथवा पाने की जिज्ञासा ही न होगी, जहाँ का तहाँ जड़ की तरह पड़े रहने में संतुष्ट रहेगा। प्रगतिशीलता उसके लिए अनहोनी बात ही रहेगी।

कक्षा में शिक्षक पढ़ाता है, पचासों लड़के सुनते हैं किंतु उनमें से दस कुछ प्राप्त कर लेते और चालीस ज्यों के त्यों रह जाते हैं। इसका कारण यही होता है कि उन दस में जिज्ञासा की प्रबलता थी, जबकि शेष चालीस में नहीं थी। जिज्ञासु की बुद्धि बड़ी ही ग्रहणीय होती है, वह एक बार में ही कोई बात देख-सुनकर ग्रहण कर लेती है और फिर कभी उसे भूलती नहीं, अजिज्ञासु बुद्धि बड़ी ही कुंद एवं कुंठित होती है। हजार बार सुनने, देखने और पढ़ने पर भी वह न तो किसी बात को ठीक से समझ पाती है और न याद ही रख पाती है। जिज्ञासा का अभाव मनुष्य को बड़ा ही मंद बुद्धि बना देता है।

एकाग्रता, तन्मयता एवं तल्लीनता के साथ विषय प्रवेश जिज्ञासु व्यक्ति के विशेष गुण होते हैं। जिज्ञासु जिस नवीन बात अथवा चीज को देखता है, उसमें एकाग्र होकर तल तक पैठ करने का प्रयत्न किया करता है, जिज्ञासु व्यक्ति का दैनिक ज्ञान अजिज्ञासु की अपेक्षा बहुत कुछ तरोताजा रहता है, एक ही स्थिति के दो मित्रों में से एक देश-देशातरों की गतिविधि से अधिक प्रामाणिक रूप में अभिज्ञात रहता है, जबकि दूसरे को अपने पास-पड़ौस की घटनाओं का भी ज्ञान नहीं रहता। यह अंतर उनकी अपनी जिज्ञासा के स्तर के कारण ही होता है।

जिज्ञासु व्यक्ति किसी बात के हर पहलू को जानने एवं समझने का प्रयत्न किया करता है और यथा संभव अवश्य ही जानबूझ लेता है जबकि अजिज्ञासु व्यक्ति केवल तात्कालिक उपयोग के पहलू के संक्षिप्त ज्ञान से ही संतुष्ट हो जाता है। इस संबंध में एक छोटी-सी कहानी प्रसिद्ध है, जिससे पता चलता है कि जिज्ञासु व्यक्ति कितना चतुर एवं उपयोगी होता है ?

एक बादशाह का एक बहुत ही मुँह लगा नौकर था। वह दिन-रात बादशाह की सेवा में लगा रहता था। एक दिन उसे विचार आया कि वह बादशाह की सेवा में दिन-रात लगा रहता है, तब भी

उसे केवल पाँच रुपये ही मिलते हैं और आपका मीरमुंशी जो कभी कुछ नहीं करता पांच सौ रुपये वेतन पाता है। इस भेद का क्या परिणाम है ? बादशाह ने हँसकर कह दिया किसी दिन मौके पर बतलाऊँगा।

एक दिन एक घोड़ों का काफिला उसकी सीमा से गुजरा। बादशाह ने अपने सेवक को भेजा कि जाकर मालूम कर यह काफिला कहाँ जा रहा है ?

नौकर गया और आकर बतलाया कि हुजूर वह काफिला सीमा के कंधार देश जा रहा है।

अब बादशाह ने मीर मुंशी को भेजा। उसने आकर बतलाया कि यह काफिला काबुल से आ रहा है और कंधार जा रहा है। उसमें पाँच सौ घोड़े और बीस ऊँट भी हैं। मैंने अच्छी तरह पता लगा लिया है कि वे सब सौदागर हैं और घोड़े बेचने जा रहे हैं। इस समय उन्हें पैसे की सख्त जरूरत है यदि हुजूर कुछ घोड़े खरीदना चाहें तो कम कीमत पर मिल सकते हैं। मैंने पचास ऐसे घोड़ों को छाँट लिया है, जो नौजवान और बड़ी ही उत्तम जाति के हैं। बादशाह ने तुरंत ही पचास घोड़े खरीद लिए जिससे उसे कम दामों पर अच्छे घोड़े मिल गये। काफिले के विषय में चिंता जाती रही और उन परदेशी सौदागरों पर बादशाह की गुण ग्राहकता का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। बादशाह ने नौकर से कहा देखा तुम्हें पाँच रुपये क्यों मिलते हैं और मीर मुंशी को पाँच सौ क्यों ? नौकर ने इस अंतर के रहस्य को समझा और सदा के लिए सावधान हो गया।

जिज्ञासु व्यक्ति किसी भी बात की तह तक बैठकर उसमें से किसी न किसी प्रकार की उपयोगिता खोज लाता है ? जिज्ञासा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चारों उन्नतियों की हेतु होती है। मनुष्य को अपनी जिज्ञासा को प्रमादपूर्वक नष्ट नहीं करना चाहिए। उसे विकसित एवं प्रयुक्त करना चाहिए और जिसमें जिज्ञासा नहीं है, उसे चाहिए कि वह तन्मय एवं गहरे पैठने के अभ्यास से उसे पैदा करे, क्योंकि जिज्ञासा भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों महान क्षेत्रों में प्रगति एवं उन्नति का आधार बनती है।

जागृत जिज्ञासा ही आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास का संबल एवं आधार बनती है। स्वाध्याय मात्र बौद्धिक विकास के लिए ही

नहीं, आत्मिक विकास के लिए भी आवश्यक है। योग साधना में भी स्वाध्याय साधना का अभिन्न अंग है। वह शौच, संतोष, तप एवं ईश्वाराराधन इन चार के समान महत्वपूर्ण पाँचवाँ नियम है।

स्वाध्याय से मात्र बुद्धि बल ही नहीं बढ़ता, आत्मबल की वृद्धि की अंतःप्रेरणा भी प्राप्त होती है। आस्थाओं के अभिवर्धन एवं दृढ़ीकरण के लिए स्वाध्याय अनिवार्य है।

एक बार एक मित्र ने सर जॉन हर्शल नामक प्रख्यात परिश्रमीय विद्वान से प्रश्न किया—“आपको सृष्टि में सर्वोत्तम वस्तु कौन-सी लगी” तो उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—

“भाँति-भाँति के संयोग-वियोग आए पर वह दृढ़तापूर्वक मेरे साथ जीवन के सुख और आनंद का झरना बने रहे। मेरे खिलाफ हवा चले, लोग मुझे बुरा कहें, धिक्कारें, रास्ता रोकें उस समय मुझे बेपरवाह बना दें। जीवन से दुःखों में मेरी ढाल बन जाए। ईश्वर से प्रार्थना करने का अवसर मुझे मिले तो मैं निवेदन करूँगा हे प्रभु ! मुझे विद्या पढ़ते रहने की रुचि दें। ज्ञान के धार्मिक महत्व को घटाए बिना यहाँ मैंने केवल उसके सांसारिक लाभ बताए हैं। विद्या की अभिरुचि कैसी आनंददायिनी है, संतोष का कैसा उन्मुक्त साधन है इतना ही मैंने यहाँ स्पष्ट किया है।”

यदि मनुष्य का जीवन सामान्य भोगोपभोग और सामाजिक जीवन के कुछ ही स्तर पर ऊँचा चढ़ने में बीता, तो सारा मनुष्य जीवन तुच्छ गया यह समझना चाहिए, महानता की उच्च सीढ़ी पर प्रतिष्ठित होना चाहिए, ज्ञान ही उसका आधार है।

विद्वान किंग्स्ले ने एक स्थान पर लिखा है—ज्ञान से ही मनुष्य में ऊँचे उठने की पात्रता आती है, सुख और वैभव भी ज्ञान के बिना नहीं मिलते फिर आध्यात्मिक आनंद तो उसके बिना मिलेगा ही कैसे ? ईश्वर तक कोई चीज पहुँचा सकती है तो वह विद्या ही हो सकती है।

संसार विलक्षण है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु विलक्षणता से परिपूर्ण है। संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आश्चर्यों के प्रति आकर्षित न होता हो। इस सृष्टि की रचना क्यों की गई और हमारा उसके प्रति क्या कर्तव्य है ? हम शरीर क्यों धारण किये हुए हैं ? यह प्रश्न जानने बड़े जरूरी हैं, इसके लिए हमें अपनी धार्मिक वृत्ति को

तेजस्विनी बनाकर आध्यात्मिक तत्त्व की खोज करनी चाहिए। ज्ञान ही धार्मिकता के साथ मिलकर विद्या कहलाती है, यह विद्या ही मनुष्य को बंधनों से मुक्त करती है।

जिन-जिन महापुरुषों ने बड़े-बड़े काम किए हैं, उन्होंने वे काम समय का सदुपयोग, विद्याध्ययन और बौद्धिक प्रतिभाओं के विकास के द्वारा ही किए हैं। दिन भर में चौबीस घंटे होते हैं। आठ घंटे सोने और आठ घंटे काम करने के लिए निकाल दिए जाएँ तो अन्यान्य विकास कार्यों अथवा मनोरंजन के लिए आठ घंटे बचते हैं। विद्याध्ययन सर्वोत्तम मनोरंजन है यदि इसके लिए प्रति दिन दो घंटे का भी समय दिया जा सके तो संसार की अनेक वस्तुओं, परिस्थितियों, समस्याओं, जीवों, जीव-वृत्तियों, तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बढ़े हुए ज्ञान की पूँजी से सांसारिक सुख भी भुनाए जा सकते हैं और पारलौकिक अनुभूतियों का सुख भी प्राप्त कर सकता है।

पहले लोगों में स्वाध्याय की स्वाभाविक वृत्ति हुआ करती थी—“काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्” का सिद्धांत प्रायः सभी मानते हैं। भारतीय संस्कृति की प्रतीक “देवी सरस्वती” स्वयं विद्या अथवा ज्ञान का ही स्वरूप है। लोग उनकी आजीवन उपासना किया करते थे और इस प्रकार बिना श्रम संसार समुद्र से पार उतर जाया करते थे।

अब स्थिति तब से भिन्न है। विद्यार्थी विद्यालय की शिक्षा समाप्त होते ही पुस्तकों को दूर रख देते हैं और उनकी ओर देखते भी नहीं। समस्याओं का उग्र होना शिक्षा की कमी नहीं बल्कि ज्ञान के अभाव के कारण है। ज्ञान मनुष्य की वृत्तियों को सतोगुणी बनाता है। विद्या मनुष्य को सौम्य, विनम्र और उदार बनाती है। जहाँ उसकी प्रतिष्ठा होगी तो वहाँ कलह और उपद्रव होंगे क्यों? समस्याएँ खड़ी होंगी क्यों? समस्याओं का अंत करने के लिए सबसे पहले विद्या बल बढ़ाना होगा। उसके लिए अधिक से अधिक साधन जुटाना होगा।

लोग अभाव और आर्थिक परिस्थितियों को कारण बताया करते हैं। कुछ लोगों को समय न होने की भी शिकायत होती है। मूल बात यह है कि ऐसे व्यक्तियों को विद्याध्ययन का न तो महत्त्व ही मालूम

होता है और न उसकी रुचि ही होती है। अनेक दृष्टांतों से यह सिद्ध हो चुका है कि गरीबी विद्याभ्यास में बाधक नहीं है। पब्लियस, साइरस, इसप, किलेंथिस, बुकर टी. वाशिंगटन और टेरेस आदि प्रातिभाशाली विद्वानों का प्रारंभिक जीवन बड़ी ही कठिनाइयों में बीता है तो भी उन्होंने ज्ञानार्जन की महत्ता प्रतिपादित कर दिखाई है। एपिक टेट्स १० वर्ष गुलाम रहा था उसके मालिक ने उसका पैर ही तोड़ दिया था किंतु बाद में उसने अपनी झोपड़ों में बैठकर शास्त्रों का स्वाध्याय किया और विद्वता उपलब्ध की। रोम के तत्कालीन सम्राट आडियान भी उसके पांडित्य का लोहा मानते हैं।

पाइथागोरस ज्यामितिशास्त्र का प्रकांड विद्वान् हुआ है, वह जीवनशास्त्र और नैतिक दर्शन का भी पंडित था। बहुत कम लोग जानते होंगे कि वह जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाता था और उन्हें बेचकर अपनी आजीविका चलाता था।

टस्कनी की ट्रियोरंटाइन एकेडेमी कौसिल के उच्च और महान् प्रतिष्ठा के पद पर नियुक्त होने वाला प्रसिद्ध इटालियन लेखक जेली जात का दर्जी था। उसने इतने ऊँचे पद पर पहुँच जाने पर भी अपना धंधा दर्जागिरी बंद नहीं किया। वह कहा करते थे, 'मैंने इसी व्यवसाय के सहारे विद्या पाई है मुझे ज्ञान से इतना प्रेम हो गया है कि अपनी इसी आजीविका के सहारे मृत्युपर्यंत ज्ञानार्जन करते रहने की हार्दिक अभिलाषा है।'

इटली का मेटास्टासिओ जब बालक था तो शहर की सड़कों में गाने गाया करता था। उससे जो पैसे मिलते थे उनकी किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ खरीदकर अधिकांश समय पढ़ने में लगाया करता था। अंत में उसकी भावना सिद्ध हुई और वह एक दिन इटली का मशहूर कवि हुआ डॉ जॉन प्रीडा जो बुर्स्टर के पोप नियुक्त हुए थे, उन्हें पढ़ने की अभिलाषा इतनी तीव्र हुई कि वह ऑक्सफोर्ड तक पैदल चलकर गए। फीस और खाने के लिए कोई सहारा नहीं था इसलिए वह कालेज के होटल में काम करने वाले रसोइए की मदद करते थे उसी से उन्हें इतने पैसे मिल जाते थे जिससे किसी तरह फीस और रोटी का साधन बन जाता था। वनस्पतिशास्त्र के जन्मदाता मीनियस भी इसी तरह एक मोची के पास काम करते हुए पढ़े थे।

यह उदाहरण इसलिए दिए गए हैं कि आर्थिक स्थिति विपरीत हो तो भी ज्ञान की आराधना की जा सकती है। पेट पालने के लिए कोई भी साधारण काम किया जा सकता है पर ज्ञान की उपयोगिता और आवश्यकता देखते हुए उसका परित्याग करना अथवा उधर से मुख मोड़ना अपने लिए ही हानिकारक होता है। ज्ञान मनुष्य की शोभा है। ज्ञान ही धन और ज्ञान ही जीवन है उसके लिए किया गया कोई भी बलिदान व्यर्थ नहीं जाता।

हम उस आध्यात्मिक आवश्यकता को भूल गए हैं। विद्या आत्मकल्याण का साधन है पर अब उसे अर्थोपार्जन का माध्यम बनाकर पंगु कर दिया गया है इसलिए हम नैतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में पिछड़ गए हैं। यह उपलब्धियाँ अब हमें तभी मिल सकती हैं जब ज्ञान को उचित प्रतिष्ठा दी जाए उसके लिए सर्वस्व, न्यौछावर की भावना बनाई जाए।

### सर्वात्म विभूति-विद्वता—

शास्त्रकार ने संदेश दिया है—

गतेऽपि वयसि गाह्या विद्या सर्वात्मना दुधैः ।

यद्यपि स्याश्र फलदा सुलभा सान्यजन्मनि ॥

“हे मनुष्यो ! उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो। विद्या इस जीवन में फलवती न हुई तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जाएगी।” मनुष्य का सबसे बड़ा विवेक, गौरव और उसकी विभूति उसकी विद्वता है, इससे बढ़कर और कोई संपत्ति इस संसार में नहीं है।

विद्या शब्द ज्ञान की सार्थकता का पर्याय है। जो ज्ञान मनुष्य की लौकिक-बंधनों से मुक्त करे और उसे जीवात्मा की वस्तु स्थिति की बूझ कराए वस्तुतः वही विद्या सार्थक है। दुर्ख-कलेश और अभाव हमें तब तक पीड़ित करते हैं, जब तक आत्म-स्वरूप का हमें ज्ञान नहीं होता। विद्या के प्रकाश में सब कुछ ऐसे झलकने लगता है जैसे सूर्य के प्रकाश से सारा संसार जगमग हो उठता है। मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी इसलिए धन नहीं, सत्ता और रूप सौंदर्य भी नहीं हैं। विद्या, बुद्धि, सद्ज्ञान, सद्बुद्धि और विवेक के मापदंड से ही व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की परख होती है। बुद्धिमान ही सच्चे धनी होते

है, विद्या ही सच्चा धन है योग्यता, विद्वता और प्रतिभा ही बड़प्पन की कसौटी है।

महान् पुरुष सदैव ऐसे ही अधिकारी पुरुषों का सान्त्रिध्य प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, जिन्हें विद्या के माध्यम से ही प्रवीणता प्राप्त हुई हो। महाराज धृतराष्ट्र को कौरवों तथा पांडवों को शस्त्र-प्रशिक्षण के लिए किसी सुयोग्य आचार्य की आवश्यकता थी किंतु कोई विद्वान् राजगुरु उन्हें दिखाई न दिया। एक दिन द्रोणाचार्य भी उनकी सभा में आए धनुर्विद्या में प्रवीण आचार्य का पांडित्य देखकर महाराज मुग्ध हो गए और उन्होंने समझ लिया कि इनके समीप रहकर बालकों के चरित्र का विकास हो सकेगा। अकेले शस्त्र प्रशिक्षण की बात रही होती तो वह कार्य कोई भी कर सकता था। नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए विद्वता भी तो आपेक्षित है।

प्राचीन काल में अध्यापन कार्य इसीलिए सबसे कठिन कार्य माना जाता था और कोई विद्वान् पुरुष ही शिक्षक बनने का साहस कर सकते थे। ऐसे व्यक्तियों को शिक्षण का कार्य सौंपा जाता था जो अक्षर ज्ञान के साथ मनुष्य की प्रतिभा विकसित करने के लिए समर्थ होते थे। वह वस्तु विद्या ही है जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती और ऊँचा उठाती है। गिरे हुए समाज के उद्धार के लिए भी विद्या एक अनिवार्य आवश्यकता है।

आधुनिक विद्या का स्वरूप कुछ बदल गया है, वह पूर्णतया अशक्त हो चुकी है। दोनों का चरित्र-बल, कर्म शक्ति, आशा, विश्वास, उत्साह, पौरुष, संयम और सात्त्विकता जागृत करने की शक्ति उसमें नहीं रही। जिस विद्या में कर्तव्य-शक्ति को प्रेरणा न मिलती हो, स्वतंत्र रूप से विचार करने की बुद्धि न आती हो, परिस्थितियों से टकराने की सामर्थ्य जो न दे सके वह विद्या निस्तेज है, निष्प्राण हैं। आज का युग कुछ ऐसा ही हो रहा है। विद्यार्थी डिग्रियाँ प्राप्त करके निकलते हैं तो उनमें छल-कपट धूर्तता, दुश्चरिता, फैशन परस्ती, बिलासिता और द्वेष, अहंकार के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। स्वतंत्र चिंतन का उनमें बिलकुल अभाव होता है। विचारों की पराधीनता का नाम अविद्या है। जो

मनुष्य को स्वाधीन बनाए सर्वोपरि साहसी बनाए, विद्या कहलाने का गौरव उसे ही मिल सकता है।

अध्यात्म रामायण में बड़े सुंदर शब्दों में उल्लेख मिलता है—

**देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।**

**नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्यति मन्यते ॥**

अर्थात्—“मैं देह हूँ” इस बुद्धि का नाम अविद्या है। मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ इसका ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची विद्या है।

देह, उसकी विशेषताएँ और उसके सुखों के प्रति जब मनुष्य की चेतना एकमुखी हो जाती है तो उसकी प्रतिभा का विकास रुक जाता है। विकास का अर्थ इहलौकिक संपदाओं की विपुलता प्राप्त कर लेना नहीं है, वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक जागृति का लक्षण है। मनुष्य का स्वत्व है उसकी आत्मा और उसकी विशेषताएँ—सद्गुण, सदप्रवृत्ति और सदाचार। आत्मा की इन विशेषताओं को उपलब्ध करना ही इस जन्म का उद्देश्य है और जो इस दिशा में हमारी चेतना को अग्रसर करे वही सच्ची विद्या है।

यह ज्ञान वैदिक साहित्य में कूट-कूट कर भरा है किंतु बाह्य शक्तियों के संघात के कारण परिस्थितियाँ ऐसी बन गई हैं कि यह वाड्मय आधुनिक शिक्षा के मलबे में दबकर रह गया है। इससे जीवन का आध्यात्मिक क्षेत्र बिलकुल उपेक्षित बनकर रह रहा है। सर्वत्र दुःख-क्लेश और अशांति के लिए इस युग का भौतिकतावादी दृष्टिकोण ही अधिक दोषी है। एक कठिनाई यह है कि इस ज्ञान को व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत करने के प्रयत्न भी बिलकुल निर्बल और कमजूर हो गए हैं, जहाँ-तहाँ कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ चलती भी हैं किंतु व्यक्तित्व के अभाव के कारण वह प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता जो जन-जीवन की दिशा बदल सके। भारतीय संस्कृति का पतन भी व्यक्तित्व के अभाव में ही हुआ है। देवालयों, शिक्षालयों बिहार श्रामण और संघों से लोगों की आस्था उठ जाने का कारण यही था कि उनमें व्यक्तित्व न रहा। देव-मंदिर जड़ थे भला वे, सांस्कृतिक शक्तियों के संघर्ष का जवाब कैसे दे सकते थे ? इससे धर्म के प्रति लोगों की आस्था उठ गई और सर्वत्र अविद्या का ही अंधकार छाकर रह गया।

वह विद्या जो मनुष्य को सही दिशा सही मार्ग और सच्चा प्रकाश दिखाती है उसे अध्यात्म कहते हैं। इस अध्यात्म को जागृत करने का काम अपने आपसे शुरू करना होगा इसके लिये विद्वता प्राप्त करना हमारी पहली आवश्यकता है। दुनियावी शिक्षा के रंग-ढंग तो बहुत देख चुके इनसे कोई समस्या हल न हो सकी। निष्कर्ष निकलता भी कैसे ? आत्म-ज्ञान के बिना परिस्थितियाँ बदल भी तो नहीं सकती। विवेक जगाने वाली विद्या न रही तो पतित होना स्वाभाविक ही था। इसी पतन से जी उकता उठा है, प्रत्येक सौंस के साथ जो गंदगी भीतर जा रही है, उसके कारण अब जन-जीवन बुरी तरह बेचैन है, छटपटा रहा है। इस घुटन को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है आध्यात्म विद्या की प्रवीणता। साधना से और व्यवहार से जब तक जीवन की दिशा सात्त्विक नहीं होती, गुण, कर्म और स्वभाव में सदृतत्वों का समावेश नहीं होता, जड़ता तब तक दूर हो नहीं सकती। आत्म-विद्या के देवालय में प्रवेश प्राप्त किए बिना न तो शांति मिल सकती है न संतोष। विद्या सुखी जीवन की प्रमुख आवश्यकता है इसे यों ही तुकराया नहीं जा सकता।

जिस विद्वता से मनुष्य स्वयं ही अपना योग्य साथी बनता है उसे प्राप्त करने के लिए अधिक अनुभव, सहनशीलता और अध्ययन की आवश्यकता है। अनुभव का उपयोग जीवन को शुद्ध बनाने के लिए है, कदम-कदम पर जो कठिनाइयाँ मनुष्य का रास्ता रोकती हैं, उनसे बचते रहने का ज्ञान प्राप्त करना ही अनुभवी होना है। अनुभव विवेक का बड़ा भाई है, सत्य-असत्य की शिक्षा उसी से मिलती है इसलिए प्रत्येक गतिविधि को एक पाठ समझकर उसकी विलक्षणताओं का अध्ययन सूक्ष्मता से करते रहना चाहिए। असंगत वस्तुओं का ज्ञान इसी तरह होगा।

विद्या आत्मा की प्यास है। इसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से ही होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्या की प्रमुख आवश्यकता है। कठोर प्रयत्नों से भी इसे प्राप्त किया जाना चाहिए। जो इसकी ओर ध्यान नहीं देता और अपने समय को व्यर्थ ही नष्ट किया करता है, वह सदा मनुष्य जन्म के फल से वंचित रहता है। विद्या मनुष्य की मलिनताओं को मिटाकर उसे उज्ज्वल बनाती है। आग में तपाए हुए सोने की शुद्धता में कोई

संदेह नहीं रहता। आत्मज्ञान का लक्षण विद्वता है, वह मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति है, उसे प्राप्त करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से योग्यता बढ़ती है, योग्यता से धन और धन से सुख मिलता है। यह आप्त पुरुषों का कथन है। हमें भी इस सुख से वंचित न रहना चाहिए।

### स्वाध्याय तप:-

गंगा तट पर स्थित महर्षि रैभ्य के आश्रम में कई ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते थे। नीति, धर्म और सदाचार का अभ्यास करने के साथ-साथ शास्त्र विद्या में भी पारंगत होकर वे समाज में जाते तथा सुयोग्य नागरिक की भूमिका निभाते थे। वहीं पास में एक और तापस रहते थे जो दिन-रात कठोर साधनाओं में लगे रहते। उन तापस का एक पुत्र था यवक्रीत—वह भी अपने पिता के समान ही जप-तप में लगा रहता। परंतु यवक्रीत की यह भी आकांक्षा थी कि वह वेद-वेदांतों का ज्ञाता, शास्त्रों में निष्पात् और पंडित बने।

इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए यवक्रीत ने अपने तापस पिता से पूछा। पिता ने कहा—“वत्स ! विद्या प्राप्ति का तो एक ही उपाय है। स्वाध्याय किया जाए।”

परंतु तात उससे तो दीर्घकाल में सिद्धि होती है—यवक्रीत ने कहा।

यह साधक की अपनी लगन, योग्यता और ग्रहणशीलता पर निर्भर है, तापस ने कहा—फिर भी इनके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।’

यवक्रीत चुप हो गया, परंतु उसके मन में यह बात ठीक से समझ नहीं आई कि एकमात्र अध्ययन ही ज्ञान प्राप्ति का साधन है। हो भी तो उसे यह बहुत लंबा और श्रम साध्य लगा, इसलिए यवक्रीत ने तप द्वारा विद्या प्राप्ति के लिए अपने पिता के पास से प्रस्थान किया। फिर एकांत स्थान में जाकर यवक्रीत तप करने लगा। पंचाग्नि तप करते हुए यवक्रीत अपने शरीर को निरंतर संतप्त करने लगे।

यवक्रीत को कठोर तप करते देखकर देवराज इंद्र उनके पास आए और उनसे तप का कारण पूछा। यवक्रीत ने बताया—“गुरु के मुख से वेदों की शिक्षा ठीक तरह से प्राप्त नहीं की जा सकती।

इसके लिए मैं तप के प्रभाव से ही संपूर्ण वेदशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।"

उपर्युक्त गुरु न मिले यह बात तो समझ में आती है, परंतु गुरु के बिना ही कोई ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए यह तो नितांत असंभव है। आपने सर्वथा उल्टा मार्ग पकड़ा है विप्रवर ! गुरु के पास जाकर अध्ययन कीजिए।

इंद्र तो चले गए, किंतु यवक्रीत ने अपनी तपस्या नहीं छोड़ी कुछ वर्षों बाद इंद्र फिर आए और पुनः समझाने लगे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपका यह उद्योग बुद्धिमत्ता युक्त नहीं है। किसी को गुरुमुख से पढ़े बिना विद्या प्राप्त भी हो तो वह सफल नहीं होती। आप अपने दुराग्रह को छोड़ दीजिए।'

इतना कहकर इंद्र चले गए, परंतु यवक्रीत ने अपना हठ नहीं छोड़ा। उन्होंने और कठिन तप आरंभ कर दिया। यवक्रीत का संकल्प था कि वह तपस्या से ही विद्या प्राप्त करके रहेगा। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होते देख यवक्रीत ने निश्चय किया कि यदि इस अनुष्ठान से विद्या की सिद्धि नहीं हुई तो वह गंगा में अपने शरीर को प्रवाहित कर देंगे। यह निश्चय कर वे एक विशेष तप-अनुष्ठान पर बैठे। यवक्रीत के इस निश्चय को जानकर देवराज इंद्र ने एक अत्यंत वृद्ध एवं रोगी ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा उसे स्थान पर आकर बैठ गए, जहाँ यवक्रीत स्नान करने के लिए आया करते थे।

यवक्रीत जब स्नान करने आए तो उन्होंने देखा कि एक दुर्बल और रोगी ब्राह्मण अंजलि में बार-बार रेत लेकर गंगा में डाल रहा है। प्रथम द्वितीय बार तो यवक्रीत ने कुछ नहीं कहा, पर जब चार-पाँच दिन तक यवक्रीत ने उस ब्राह्मण को ऐसा करते देखा तो पूछ ही बैठा—'विप्रवर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?'

'लोगों को यहाँ गंगा के उस पार जाने में बड़ा कष्ट होता है'—वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—'इसलिए मैं गंगा पर पुल बाँध देना चाहता हूँ।'

यवक्रीत ने कहा—भगवन् ! आप इस महाप्रवाह को बालू से किसी प्रकार बाँध नहीं सकते ? इसलिए असंभव उद्योग को छोड़कर संभव प्रयास कीजिए।'

“आप जिस प्रकार तपस्या के द्वारा विद्या सिद्ध करना चाहते हैं उसी प्रकार मैं भी यह कार्य कर रहा हूँ। आप असाध्य को यदि साध्य कर सकेंगे तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा”—वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण किये इन्द्र ने कहा।

ब्राह्मण कौन है यह यवक्रीत समझ गए और वे महर्षि रैथ्य के आश्रम में जाकर स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति की साधना में संलग्न हो गए।

### ज्ञान ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति—

ज्ञान को ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति माना गया है। वास्तविक वस्तु वह है जो सदैव रहने वाली हो। संसार में हर वस्तु काल पाकर नष्ट हो जाती है। धन नष्ट हो जाता है, तन जर्जर हो जाता है, साथी और सहयोगी छूट जाते हैं। केवल ज्ञान ही एक ऐसा अक्षय तत्त्व है, जो कहीं भी किसी अवस्था और किसी काल में मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता।

धन, जन को भी मनुष्य की एक शक्ति माना गया है। किंतु यह उसकी वास्तविक शक्तियाँ नहीं हैं। इनका भी मूल स्रोत ज्ञान ही है। ज्ञान के आधार पर ही धन की उपलब्धि होती है और ज्ञान के बल पर ही समाज में लोगों को अपना सहायक तथा सहयोगी बनाया जाता है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए संसार की कोई वस्तु संभव नहीं। धन के लिए व्यापार-व्यवसाय किया जाता है, नौकरी और शिल्पों का अवलंबन किया जाता है, कला-कौशल की सिद्धि की जाती है। किंतु इनकी उपलब्धि से पूर्व मनुष्य को इनके योग्य ज्ञान का अर्जन करना पड़ता है। यदि वह इन उपायों के विषय में अज्ञानी बना रहे तो किसी भी प्रकार इन विशेषताओं की सिद्धि नहीं कर सकता और तब फलस्वरूप धन से सर्वथा वंचित ही रह जाएगा।

यही बात जन शक्ति के विषय में भी कही जा सकती है। जन-बल को भी अपने पक्ष में करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। जब किसी को जनमानस का ज्ञान होगा, उसकी आवश्यकताओं और समस्याओं की जानकारी होगी, उसे सत्यथ दिखला सकने की योग्यता होगी, उसके दुख-दर्द और कष्ट-क्लेशों के निवारण कर सकने की बुद्धि होगी, तभी जन बल पर, अपनी छाप छोड़कर उसे अपने पक्ष में किया जा सकता है। जनता का सहज स्वभाव होता है।

कि वह अपने सच्चे हितैषी का ही पक्ष धारण किया करती है। जनता का हित किस बात में है और संपादन किस प्रकार किया जा सकता है, इसका ज्ञान हुए बिना ऐसा कौन है, जो जन-बल को अपनी शक्ति बना सके। जन-बल का उपार्जन भी ज्ञान द्वारा ही संभव हो सकता है।

किसी शक्ति के उपलब्ध हो जाने के बाद भी उसकी रक्षा और उसके दुरुपयोग के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान के अभाव में शक्ति का होना न होना बराबर होता है। उसका कोई लाभ अथवा कोई भी आनंद नहीं उठाया जा सकता। उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि कोई उपार्जन अथवा उत्तराधिकार में बहुत-सा धन पा जाता है या किसी संयोगवश उसे अकंस्मात् मिल जाता है, तो क्या यह माना जा सकता है कि वह धन शक्ति वाला हो गया क्योंकि धन में स्वयं अपनी कोई शक्ति नहीं होती। वह शक्ति तभी बन पाती है, जब उसके प्रयोग अथवा उपयोग से ज्ञान का समावेश होता है।

यदि मनुष्य यह भी न जानता हो कि वह उस धन से कौन-सा व्यवसाय करे, किस जन-हितैषी संस्था को दान दे, समाज के लाभ के लिए, कौन-सी क्या स्थापना करे ? वह धन द्वारा किस प्रकार दीन-दुःखियों, अपाहिजों अथवा आवश्यकताग्रस्त लोगों की सहायता करें ? उसको व्यय कर किस प्रकार का रहन-सहन बनाए, क्या और किस प्रकार के कामों में उसको भगाए, जिससे समाज में उसका आदर हो, आत्मा में प्रकाश हो और परमार्थ में रुचिता बढ़े तो वह उसकी क्या शक्ति बनकर सहायक हो सकेगा।

बल्कि अज्ञान की अवस्था में या तो वह धन को आबद्ध रखकर समाज और राष्ट्र की प्रगति रोकेगा, चोर-डाकुओं और ठगों को आकर्षित करेगा अथवा ऊल-जलूल विधि से उसका अपव्यय एवं अनुपयोग करके समाज में विकृतियाँ पैदा करेगा, अपना जीवन खिंगाड़ेगा। यह तो मनुष्य की वास्तविक शक्ति का लक्षण नहीं है। धन की शक्ति में वास्तविकता तभी आती है, जब उसके संग्रह एवं उपयोग का ठीक-ठीक ज्ञान होता है नहीं तो अपमार्गों द्वारा संचित धन मनुष्य की निर्बलता और आशंका का हेतु बनता है। दुरुपयोग द्वारा भी यह समाज में अपवाद, ईर्ष्या, द्वेष आदि का लक्ष्य बनकर निर्बलता की ओर बढ़ता है। इसलिए यह मानना ही होगा कि वास्तविक शक्ति न

धन में होती है और न जन में, वह होती है उस ज्ञान में जो इन उपलब्धियों के उपार्जन एवं व्यय का नियंत्रण किया करता है।

शारीरिक शक्ति को तो प्रायः लोग निर्विवाद रूप से शक्ति ही मानते हैं। किंतु वास्तविकता यही है कि इस शक्ति को भी नियंत्रित तथा उपयोग करने का ठीक ज्ञान न हो तो इसका कोई लाभ नहीं होता। शारीरिक शक्ति को कहाँ लगाया जाए, उसका उपयोग किस प्रकार किया जाए—यदि इस बात की ठीक जानकारी न हो तो या तो वह शक्ति किसी शोषक के अर्थ लग जाएगी अथवा कोई कुटिल उसका उपयोग कर किसी संकट में उलझा देगा। यदि एक बार ऐसा न भी हो तो भी किसी सृजन में न लगकर या तो वह यों ही नष्ट हो जाएगी अथवा किसी ऐसे काम में स्थापित हो जाएगी, जिसका मूल्य नगण्यतम ही होगा।

ज्ञान-हीन शारीरिक शक्ति, पशु शक्ति होती है। वह अपना और दूसरों का बहुत कुछ अनिष्ट कर सकती है। अपना अनिष्ट तो इस तरह कि वह बल के अभिमान में कोई ऐसा प्रदर्शन करने का प्रयत्न कर सकता है, जिसमें अंग-भंग हो जाए, शक्तिमद से प्रेरित होकर किसी से अकारण उलझकर संकट उत्पन्न कर सकता है। अपनी धृष्टता और उदंडता से समाज को विरोधी बना सकता है। सदुपयोग का ज्ञान न होने से चुप न रहने वाली शारीरिक शक्ति गलत रास्तों पर जा सकती है और इसी अबूझ तथा अनियंत्रित प्रवाह में पड़कर ही तो बहुत-से लोग अपराधी, अत्याचारी तथा दुस्साहसी बन जाया करते हैं और तब उनकी वह शक्ति विविध प्रकार के भयों का कारण बन जाती है। इसलिए तन, मन, धन और जन-शक्ति को वास्तविक शक्ति न मानकर उस ज्ञान को ही मानना चाहिए, जो उनके उपार्जन नियंत्रण तथा उपयोग का संचालन किया करता है।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति ज्ञान है—पर वास्तविक ज्ञान क्या ? इसका जान लेना भी नितांत आवश्यक है। ऐसा किए बिना मनुष्य किसी भी जानकारी को ज्ञान समझकर पथ-भ्रांत हो सकता है। यदि वह भौतिक विभूतियों के उपार्जन के उपायों की जानकारी को ज्ञान समझ ले अथवा किन्हीं गलत क्रियाओं की विधि या अपने किसी अंध-विश्वास को ही ज्ञान समझ बैठे, तब तो उसका कल्याण ही नष्ट हो जाए और वह अज्ञान के अंधकार में ही भटकता रह जाए।

शास्त्रकारों और मनीषियों ने जिस वास्तविक ज्ञान का संचय करने का निर्देश किया है, वह स्कूल और कालिजों में मिलने वाली शिक्षा नहीं है और न इसे संचय करके ज्ञान प्राप्ति का संतोष कर लेना चाहिए। स्कूली शिक्षा तो लौकिक जीवन को साधन-संपन्न बनाने और वास्तविक ज्ञान की ओर अग्रसर होने का एक माध्यम मात्र है, वास्तविक ज्ञान नहीं है।

बहुत-से लोग शास्त्र और धार्मिक ग्रंथों में दिए निर्देशों की जानकारी ही को ज्ञान मान बैठते हैं और बहुत-से लोग महात्माओं अथवा आर्ष-ग्रंथों के वाक्यों को रट लेना भर भी ज्ञान समझ बैठते हैं। किंतु यह सब बातें भी वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के लिए साधन मात्र हैं। वास्तविक ज्ञान नहीं है। शास्त्रों को स्वाध्याय और महात्माओं का सत्संग वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में सहायक तो हो सकता है किंतु इसका उपार्जन तो मनुष्य को स्वयं ही आत्म चिंतन एवं मनन द्वारा ही करना पड़ता है। पुस्तक पढ़ लेने अथवा किसी महात्मा का कथन सुन लेने भर से वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। वास्तविक ज्ञान तो आत्मानुभूति के द्वारा ही संभव हो सकता है।

आज के वैज्ञानिक काल में ज्ञान के विषय में और भी अधिक भ्रम फैला हुआ है। लोग वैज्ञानिक शोधों, आविष्कारों और अन्वेषणों को ही वास्तविक ज्ञान मानकर मदमत्त हो रहे हैं। प्रकाश, ताप, विद्युत, वायु, जल, गति चुंबकत्व के ज्ञान और उसके उपयोग, प्रयोग को ही सच्चा ज्ञान समझकर अज्ञान के घने अंधकार में धूंसते चले जा रहे हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि आज का सारा वैज्ञानिक ज्ञान विशुद्ध भौतिक अनुभूतियों को प्राप्त करने के लिए साधन भर है और आज के इन वैज्ञानिक साधनों ने मनुष्य को इस सीमा तक प्रांत कर दिया है कि वह आत्मा, परमात्मा को भूलकर बुरी तरह नास्तिक बनता जा रहा है। जिसकी परिसमाप्ति, यदि शीघ्र ही अज्ञान और विज्ञान विषयक अंधविश्वास का सुधार न किया गया तो भयानक ध्वंस में ही होगी। जिस ज्ञान का परिणाम विनाश हो उसे वास्तविक ज्ञान किस प्रकार माना जा सकता है ?

वास्तविक ज्ञान का लक्षण तो वह स्थिर बुद्धि और उसका निर्देशन है, जिसे पाकर मनुष्य अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, असत्य से सत्य की ओर उन्मुख होता है। सच्चे

ज्ञान में न तो असंतोष होता है और न लिप्साजन्य आवश्यकताएँ। उसकी प्राप्ति तो आत्मज्ञाता, आत्म-प्रतिष्ठा और आत्म-विश्वास का ही हेतु होती है। जिस ज्ञान से इन दिव्य विभूतियों एवं प्रेरणाओं की प्राप्ति नहीं होती, उसे वास्तविक ज्ञान मान लेना बड़ी भूल होगी।

इस प्रकार का वास्तविक ज्ञान किसी प्रकार का भौतिक ज्ञान नहीं शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान ही हो सकती है और सांसारिक कर्म करते हुए, उसे प्राप्त करने का उपाय करते ही रहना चाहिए। फिर इसके लिए चाहे स्वाध्याय करना पड़े, सत्संग अथवा चिंतन-मनन करना पड़े, आराधना, उपासना अथवा पूजा-पाठ करना पड़े। वास्तविक ज्ञान के बिना न तो जीवन में शांति मिलती है और न उसको परकल्पाण प्राप्त होता है।

वास्तविक ज्ञान ही जीवन का सार और आत्मा का प्रकाश है। एक मात्र सच्चा ज्ञान ही लोक-परलोक में अक्षय तत्त्व और सच्चा साथी है, बाकी सब कुछ नश्वर तथा मिथ्या है तथापि ज्ञानवान् पुरुष के लिए यह मिथ्या जगत् और नश्वर पदार्थ भी आत्म-दर्पण में आत्मस्वरूप के रूप में प्रतिविमित होते हुए यथार्थ रूप में प्रतीत होने लगते हैं। ज्ञान का अमृत न केवल मनुष्य को ही बल्कि उसके जीवन-जगत को भी अमरत्व प्रदान कर देता है। ज्ञान की महिमा अपार एवं अकथनीय है।

ज्ञान की प्राप्ति ही मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य है। अस्तु, इस सत्य को अच्छी प्रकार हृदयंगम करके सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने का हर संभव उपाय करते ही रहना चाहिए, कि तन, धन अथवा जन की शक्ति वास्तविक शक्ति नहीं है और उनकी प्राप्ति का उपाय ही ज्ञान है। यह सब भौतिक जीवन में साधनों का समावेश करने का माध्यम मात्र है। वास्तविक ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान ही है और वही मनुष्य की सच्ची शक्ति भी है, जिसके सहारे वह आत्मा तक और आत्मा से परमात्मा तक पहुँचकर उस सुख, उस शांति और उस संतोष का अक्षय भंडार हस्तगत कर सकता है, जिसको वह जन्म-जन्म से खोज रहा है किंतु पा नहीं रहा है। ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य इच्छित जगत के निर्माण में समर्थ होता है। स्वाध्याय, सत्संग एवं चिंतन-मनन की त्रिपदा साधना ही ज्ञान-सिद्धि का उपाय है।

## स्वाध्याय-जीवन विकास की अनिवार्य आवश्यकता

बहुत बार हममें से अनेक लोग किसी को धारा-प्रवाह बोलते एवं भाषण देते देखकर मंत्र-कीलित जैसे हो जाते हैं और वक्ता के ज्ञान एवं उनकी प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं और कभी-कभी यह भी मान लेते हैं कि इस व्यक्ति पर माता सरस्वती की प्रत्यक्ष कृपा है। इसके अंतर्पट खुले हुए हैं, तभी तो ज्ञान का अविरल स्रोत इसके शब्दों में मुख के द्वारा बाहर बहता चला आ रहा है।

बात भी सही है, श्रोताओं का इस प्रकार आश्चर्य विभोर हो जाना अस्वाभाविक भी नहीं है। सफल वक्ता अथवा समर्थ प्राध्यापक जिस विषय को लेते हैं, उस पर घंटों एक बार बोलते चले जाते हैं और यह प्रमाणित कर देते हैं कि उनको उस विषय का सांगोपांग ज्ञान है और उनकी सारी विद्या जिद्धा के अग्रभाग पर रखी हुई है। यह बात लगती तो वास्तव में एक चमत्कार है, एक सिद्धि जैसी। जबकि वह कोई मांत्रिक सिद्धि नहीं होती है। वह सारा चमत्कार उनके उस स्वाध्याय का सुफल होता है, जिसे वे किसी दिन भी किसी अवस्था में नहीं छोड़ते। उनके जीवन में कदाचित ही कोई अभाग दिन जाता हो, जिसमें वे मनोयोगपूर्वक घंटे दो घंटे स्वाध्याय न करते हों। स्वाध्याय उनके जीवन का एक अंग और प्रतिदिन की एक आवश्यकता बन जाता है। जिस दिन वे अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते, उस दिन वे अपने तन-मन और आत्मा में एक भूख, एक रिक्तता का अनुभव किया करते हैं। उस दिन को वे जीवन का एक मनहूस दिन मानते और उस मनहूस दिन को कभी भी अपने जीवन में आने का अवसर नहीं देते।

यही तो वह अबाध तप है जिसका ज्ञान मुखरता के रूप में वक्ताओं एवं विद्वानों की जिद्धा पर सरस्वती के वास का विश्वास उत्पन्न करा देता है। चौबीसों घंटों सरस्वती की उपासना में लगे

रहिये, जीवन भर ब्राह्मी मंत्र एवं ब्राह्मी बृटी का सेवन करते रहिए, किंतु स्वाध्याय किसी दिन भी न करिए और देखिए कि सरस्वती की सिद्धि तो दूर पास की पढ़ी हुई विद्या भी विलुप्त हो जाएगी। सरस्वती स्वाध्याय का अनुगमन करती है, इस सत्य का सम्मान करता हुआ जो साधक उसकी उपासना करता है, वह अवश्य उसकी कृपा का भागी बन जाता है।

नित्य ही तो न्यायालयों में देखा जा सकता है कि कोई एक वकील तो धारावाहिक रूप में बोलता और नियमों की व्याख्या करता जाता है और कोई टटोलकर भूलता याद करता हुआ-सा कुछ थोड़ा-बहुत बोल पाता है। दोनों वकीलों ने एक समान ही कानून की परीक्षा पास की, उनके अध्ययन का समय भी बराबर रहा, पैसा और परिश्रम भी परीक्षा पास करने में लगभग एक-सा ही लगाया और न्यायालयों में पक्ष प्रतिपादन का अधिकार भी समान रूप से ही मिला है—तब यह ध्यानाकर्षक अंतर क्यों? इस अंतर का अन्य कोई कारण नहीं, एक ही अंतर है और वह है स्वाध्याय। जो वकील धारावाहिक रूप में बोलकर न्यायालय का वायुमंडल प्रभावित कर अपने पक्ष का समर्थन जीत लेता है—वह निश्चय ही, बिना नागा घंटों स्वाध्याय का व्रती होगा। इसके विपरीत जो वकील अविश्वासपूर्वक विश्रृंखल प्रतिपादन करता हुआ दिखलाई दे, विश्वास कर लेना चाहिए कि यह स्वाध्यायशील नहीं है। यों ही अपनी पिछली योग्यता, स्मृति के आधार पर पक्ष प्रतिपादन का असफल प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार के स्वाध्यायहीन वकील अथवा प्रोफेसर अपने काम में सफल नहीं हो पाते और प्रगति की दौड़ में पीछे पड़े हुए घिसटते रहते हैं। उनको अपने पेशे में कोई अभिरुचि नहीं रहती और शीघ्र ही वे उसे छोड़कर भाग जाने की सोचने लगते हैं।

ऐसे असफल न जाने कितने वकील एवं प्रोफेसर देखने को मिल सकते हैं, जो स्वाध्यायहीनता के दोष के कारण अपना-अपना स्थान छोड़कर छोटी-मोटी नौकरी में चले गए हैं। ऐसे विशाल एवं सम्मानित क्षेत्र से अपने अवांछनीय दोष के कारण भाग खड़ा होना मनुष्य के लिए बड़ी लज्जास्पद असफलता है।

इतना ही नहीं, वर्षों पुराने, अनुभवी और मजबूती से जमे हुए अनेक वकील प्रमाद के कारण नए-नए आए हुए वकीलों द्वारा उखाड़

फेंक देखे जा सकते हैं। पुराने लोग अपने विगत स्वाध्याय, जमी प्रेक्टिस, प्रमाणित प्रतिभा और लंबे अनुभव के अभिमान में आकर यह सोचकर दैनिक स्वाध्याय में प्रमाद करने लगते हैं कि हम तो इस क्षेत्र के महारथी हैं, इस विषय के सर्वज्ञ हैं, कोई दूसरा हमारे सामने खड़े होने का साहस ही नहीं कर सकता। किंतु नया आया हुआ वकील नियमपूर्वक अपने विषय का अनुदैनिक स्वाध्याय करता और ज्ञान को व्यापक बनाता और माँजता रहता है। प्रमाद एवं परिश्रम का जो परिणाम होना है, वह दोनों के सामने उसी रूप में आता है। निदान पुराना वकील पीछे पड़ जाता है और नया आगे निकल जाता है।

एक वकालत में ही नहीं किसी भी विषय अथवा क्षेत्र में अध्ययनशीलता एवं अध्ययनहीनता का परिणाम एक जैसा ही होता है। इसमें चिर, नवीन अवस्था का कोई आक्षेप नहीं होता। यह एक वैज्ञानिक सत्य है, जिसमें अपवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

धार्मिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र ले लीजिए कोई अमुक नित्य चार-चार बार पूजा करता, तीन-तीन घंटे आसन लगाता, जाप करता अथवा कीर्तन में निमग्न रहता। व्रत उपवास रखता, दान दक्षिणा देता है, किंतु शास्त्रों अथवा सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, उनके विचारों का चिंतन-मनन नहीं करता। सोच लेता है जब मैं इतना क्रिया-कांड करता हूँ तो इसके बाद अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आत्म-ज्ञान अथवा परमात्म अनुभूति करा देने के लिए इतना ही पर्याप्त है तो निश्चय ही यह भ्रम में हैं। आत्मा का क्षेत्र वैचारिक क्षेत्र है सूक्ष्म भावनाओं एवं मनन-चिंतन का क्षेत्र है।

अध्ययन के अभाव में इस आत्म-जगत में गति कठिन है। आत्मा के स्वरूप का ज्ञान अथवा परमात्मा के अस्तित्व का परिचय प्राप्त हुए बिना उनसे संपर्क किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है? इस अविगत का ज्ञान तो उन महान् मनीषियों का अनुभव अध्ययन करने से ही प्राप्त हो सकना संभव है, जो अवतार रूप में संसार को देवों का ज्ञान देने के लिए परमात्मा का प्रतिनिधित्व करते रहते हैं। आसन-ध्यान, पूजा-पाठ तो प्रधान रूप में बुद्धि को परिष्कृत और आचरण को उज्ज्वल बनाने के लिए, इस हेतु करना आवश्यक है कि अध्यात्म के वैदिक तत्त्व को समझने और ग्रहण करने की

क्षमता प्राप्त हो सके। इसके विपरीत यदि एक बार पूजा-पाठ को स्थगित भी रखा जाए और एकाग्रता एवं आस्थापूर्वक स्वाध्याय और उसका चिंतन-मनन भी किया जाए तो बहुत कुछ उसी दिशा में बढ़ा जा सकता है। स्वाध्याय स्वयं ही एक तप, आसन और साधना के समान है। इसका नियम निर्वाह करने में आप ही आप अनेक नियम, संयमों का अभ्यास हो जाता है।

स्वाध्याय में मनुष्य का अंतःकरण निर्मल कर देने और उसके अंतर्फट खोलने की सहज ही क्षमता विद्यमान् है। आंतरिक उद्घाटन हो जाने से मनुष्य स्वयं ही आत्मा अथवा परमात्मा के प्रति जिज्ञासु हो उठता है। उसकी चेतना उर्ध्वमुखी होकर उसी ओर को उड़ने के लिए, पर तौलने लगती है। उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रस्फुटन स्वाध्याय के द्वारा ही हुआ करता है। स्वाध्याय निःसंदेह एक ऐसा अमृत है, जो मानस में प्रवेश कर मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को नष्ट कर देता है।

चारित्रिक उज्ज्वलता स्वाध्याय का एक साधारण और मनोवैज्ञानिक फल है। सद्ग्रांथों में सन्निहित साधु वाणियों का निरंतर अध्ययन एवं मनन करते रहने से मन पर संस्कारों की स्थापना होती है, जिसमें चित्त आपसे आप दुष्कृत्यों की ओर से फिर जाता है। स्वाध्यायी व्यक्ति पर कुसंग का भी प्रभाव नहीं पड़ने पाता, इसका भी एक वैज्ञानिक कारण है। जिसकी स्वाध्याय में रुचि है और जो उसको जीवन का एक ध्येय मानता है, वह आवश्यकताओं से निवृत्त होकर अपना सारा समय स्वाध्याय में ही तो लगाता है। इसलिए उसके पास कोई फालतू समय ही नहीं रहता, जिसमें वह जाकर इधर-उधर यायावरी करेगा और दूषित वातावरण से अवांछनीय तत्त्व ग्रहण कर लाएगा।

इसी प्रकार 'रुचि-साम्य संपर्क' के सिद्धांत के अनुसार भी यदि उसके पास कोई आवेगा तो प्रायः उसी रुचि का होगा और उन दोनों को एक सामयिक सत्संग का लोभ होगा। रुचि वैषम्य रखने वाला स्वाध्यायशील के पास जाने का कोई प्रयोजन अथवा साहस ही न रखेगा और यदि असंयोगवश ऐसे कोई व्यक्ति आ भी जाते हैं तो उनके पास का वातावरण अपने अनुकूल न पाकर, देर तक ठहर ही

न पाएँगे। निदान संगतिजन्य आचरण दोषों का स्वाध्यायशील के पास कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

आत्मोन्नति के संबंध में विपरीत वृत्तियाँ आलस्य, प्रमाद अथवा असंयम आदि स्वाध्यायशील व्यक्ति के निकट नहीं जाने पाती। इसका भी एक वैज्ञानिक हेतु ही है, कोई सुरक्षा कवच का प्रभाव नहीं है। जिसे पढ़ना है और नित्य नियम से जीवन का ध्येय समझकर पढ़ता है, वह तो हर अवस्था में अपने उस व्रत का पालन करेगा ही। वह जानता है, अव्यवस्था अथवा अनियमितता, उसके इस रुचिपूर्ण व्रत में बाधक होगी। अस्तु वह जीवन की एक सुनिश्चित दिनचर्या बनाकर चलता है। उसका सोना, जागना, खाना-पीना, टहलना, धूमना और कारबार करने के साथ-साथ पढ़ने-लिखने का कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में बड़े अच्छे ढंग से चला करता है। जिसने जीवन के क्षणों को इस प्रकार उपयोगितापूर्वक नियमबद्ध कर दिया है, उसका तो एक-एक क्षण तपस्या का ही समय माना जाएगा। जिसने जीवन में व्यवस्था एवं नियमबद्धता का अभ्यास कर लिया, उसने मानो अपने आत्म-लक्ष्य के लिए एक सुंदर नसैनी तैयार कर ली है, जिसके द्वारा वह सहज ही में ध्येय तक जा पहुँचेगा।

अनुभव सिद्धि विद्वानों ने स्वाध्याय को मनुष्य का पथप्रदर्शक नेता और मित्र जैसा हितैषी बताता है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति सत्पथ प्रदर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है, उसका नाड़ी आदि इंद्रियों पर अधिकार नहीं रहता। उसका मन चंचल, विवेकमंद और बुद्धि कुंठित रहती है। इन सब दोषों के कारण उसे दुर्खों का भागी बनना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति वही है, जो अपने सच्चे मित्र स्वाध्याय को कभी नहीं छोड़ता। इसीलिए तो गुरुकुल से अध्ययन पूरा करने के बाद विदा लेते समय गुरु, शिष्य को यही अंतिम उपदेश दिया करता था—

**“स्वाध्यायात् मा प्रमद !”**

अर्थात्—“हे प्यारे शिष्य ! अपने भावी जीवन में स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में प्रमाद मत करना !”

स्वाध्याय से जहाँ संचित ज्ञान सुरक्षित तो रहता ही है, साथ ही उस ज्ञान कोश में नवीनता और बुद्धि भी होती रहती है। वहाँ

स्वाध्याय से विरत हो जाने वाला नई पूँजी पाना तो क्या गँठ की विद्या भी खो देता है।

स्वाध्याय जीवन विकास के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है, जिसे हर व्यक्ति को पूरा करना चाहिए। अनेक लोग परिस्थितियोंवश अथवा प्रारंभिक प्रभादवश पढ़-लिख नहीं पाते और जब उन्हें शिक्षा और स्वाध्याय के महत्व का ज्ञान होता है, तब हाथ मल-मल कर पछताते हैं।

किंतु इसमें पछताने की बात होते हुए भी अधिक चिंता की बात नहीं है। ऐसे लोग जो स्वयं पढ़-लिख नहीं सकते, उन्हें विद्वानों का सत्संग करके और दूसरों द्वारा सद्ग्रन्थों को पढ़ाकर सुनने अथवा उनके प्रवचन का लाभ उठाकर अपनी इस कमी की पूर्ति करते रहना चाहिए। जिनके घर पढ़े-लिखे बेटी-बेटे अथवा नाती-पीते हों, उन्हें चाहिए कि संध्या समय उनको अपने पास बिठा कर सद्ग्रन्थों का पाठ कराएँ।

इस प्रकार उसका स्वयं तो लाभ होगा ही, बच्चों को भी सद्ग्रन्थों का अध्ययन करने का अभ्यास हो जाएगा। जहाँ चाह, वहाँ राह—के सिद्धांत के अनुसार यदि स्वाध्याय में रुचि है और उसके महत्व को हृदयंगम कर लिया गया है तो शिक्षा अथवा अशिक्षा का कोई व्यवधान नहीं आता, स्वाध्याय के ध्येय को अनेक तरह पूरा किया ही जा सकता है।

महान् दार्शनिकों, अन्वेषी सिद्ध-तपस्त्रियों और श्रेष्ठ महापुरुषों के प्रचंड परिश्रम से उपार्जित—उपलब्ध अमूल्य रत्न-राशि का सहजता से हाथ लग जाना कितना बड़ा सौभाग्य है, यह उनके ही जीवन से जाना जा सकता है, जिन्होंने इस सौभाग्य को पाने का अवसर गँवाया नहीं है। इतने अनुभवपूर्ण ज्ञान को इतनी सुगमता से पा सकना सचमुच मनुष्य के लिए कितना श्रेष्ठ अनुदान है ?

व्यक्तित्व के उत्कर्ष के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा ही प्रभावी सिद्ध होती है। ऐसी प्रेरणा पाना ही सत्संग का लाभ उठाना कहा गया है। व्यक्तियों का सत्संग तो वैसे भी दुर्लभ ही है। सामान्यतः जो लोग कुछ आगे बढ़े-चढ़े होते भी हैं, उनसे जितना सद्ज्ञान मिलता है, उससे अधिक आंतियों का अंबार मिलता है। जबकि उत्तम पुस्तकों के रूप में हमें उत्कृष्ट मनीषा का सान्निध्य सहज उपलब्ध हो जाता है।

एस० डब्ल्यू० क्लेमेन्स के एक प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने १६२० में एक बार कहा था कि जिन पुस्तकों ने मेरे जीवन और चिंतन को रूप दिया वे हैं, 'भगवद्गीता', 'बाइबिल', रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' तथा ताल्सताय की 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू'। उनके सचिव महादेव भाई देसाई का कहना है कि "गांधीजी के जीवन का प्रत्येक क्षण गीता के संदेश के अनुरूप जीवनयापन का सजग प्रयत्न है।" गांधी के सविनय अवज्ञा पर थोरो की कृतियों का प्रभाव रहा है। उन्होंने लिखा है, "थोरो की पुस्तक 'वाल्डेन' मैंने पहली बार १६०६ में दक्षिण अफ्रीका के जोहानसर्वग में पढ़ी। थोरो ने सविनय अवज्ञा के विचार का आविष्कार एवं व्यवहार दोनों ही किए थे। कांकर्ड ने मैसासुचेट्स में अमेरिकन सरकार के प्रति अपना विरोध व्यक्त करने के लिए कर देने से इनकार किया था। जेल भी गए थे। थोरो का निबंध पढ़ने के पहले मुझे अपने भारतीय शब्द 'सत्याग्रह' के लिए कोई उपयुक्त अंग्रेजी अनुवाद नहीं मिल सका था। थोरो के विचारों ने भारत में मेरे आंदोलन को निश्चय ही पर्याप्त प्रभावित किया है।

रस्किन के "अन टु दिस लास्ट" ने भी गांधीजी को अभिभूत कर लिया। बाद में उन्होंने "सर्वोदय" नाम से इस कृति का गुजराती अनुवाद भी प्रस्तुत किया। उनकी गहनतम आस्थाएँ इसी पुस्तक को पढ़ते हुए जागृत हुईं। इसी प्रकार गीता को वे अपना आध्यात्मिक संदर्भ ग्रंथ मानते थे तथा संशय के किसी भी अवसर पर उसी प्रकाश-स्रोत ग्रंथ की शरण जाते एवं मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। वे उसे अपनी माँ कहते थे।

जार्ज वाशिंगटन के मन में स्वतंत्रता की अमर आग पुस्तकों ने ही लगाई थी। रोम्यां रोलॉ के उपन्यास 'जां क्रिस्तोफ' ने हजारों लोगों में नई जीवन-दृष्टि जगाई। मेरी स्टो की पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' ने अमरीका एवं पाश्चात्य जगत में हलचल मचा दी थी। तो गोर्की की 'माँ' ने रूस को हिला दिया था।

हीगेल के दर्शन के अध्ययन ने मार्क्स को अपनी जीवन दृष्टि के निर्धारण के लिए प्रचुर सामग्री दी तथा एडमस्मिथ, डेविड रिकार्डो आदि अर्थशास्त्रियों की कृतियों ने अर्थशास्त्रीय दृष्टि दी। इस मेधावी सिद्धांतकार के जीवन में सदैव पुस्तकों का अत्यधिक महत्व रहा।

और जीवन के बहुमूल्य वर्ष उसने गंभीर अध्ययन में बिताए। लेनिन को रूसी समाजवादी क्रांति की प्रेरणा मार्क्स ए गेल्स की प्रभावी रचनाओं से ही मिली। इस प्रकार अमरीका और रूस दोनों के स्वतंत्रता-संग्राम में पुस्तकों की विशेष भूमिका रही। अफ्रीकी देशों में जो जागृति दिखाई पड़ रही है, उसमें भी पुस्तकों की प्रेरणाएँ अंतर्निहित हैं। केनेथ काउंडा, जोमो केन्याता, मकारियोस सभी ने किसी प्रत्यक्ष सत्संग से नहीं, प्रेरक पुस्तकों से ही संघर्ष की प्रेरणाएँ पाईं।

माओत्सेतुंग को मार्क्स की ही नहीं, सनयात-सेन की भी पुस्तकों ने प्रभावित किया। होची मिन्ह और चैवेवारा मार्क्सवादी साहित्य के अध्येता भी थे प्रणेता भी।

भारतीय क्रांतिकारियों के जीवन में बंकिम के 'आनंद मठ', शरत के 'पथेर दावी' और लोकमान्य तिलक के 'गीता-रहस्य' की विशिष्ट भूमिका रही है। विवेकानन्द और अरविंद की कृतियों ने अनेक अभिनव राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों को शक्ति दी। जबकि खुद विवेकानन्द और अरविंद ने वेद उपनिषद् एवं भारतीय शास्त्रों तथा पाश्चात्य दार्शनिक ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया था।

दार्शनिक एमर्सन कहा करते थे कि पुस्तकों से प्रेम ईश्वर के राज्य में पहुँचने का विमान है। सिसरो के अनुसार "अच्छी पुस्तकों को घर में सचित-संग्रहीत करना घर को देव-मंदिर बनाना है।"

कैंपिस ने एक बार अपने साथियों से कहा था—"अपना कोट बेचकर भी अच्छी पुस्तकें खरीदो। कोट के बिना जाड़ों में शरीर को कष्ट होगा किंतु पुस्तकों के बिना तो आत्मा ही भखी-तड़पती रहेगी।"

पुश्किन, ताल्सताय, तुर्गनेव, चेख्चव और गर्की की पुस्तकों ने जितना रूसी जन-मन को आंदोलन-संदित किया है, उससे कुछ कम बाहरी विश्व को नहीं। उपनिषदों का संदेश दुनिया भर के तत्त्वान्वेषियों को नई अंतर्दृष्टि तथा अभिनव चेतना से भरता रहा है। शेक्सपियर का प्रभाव-क्षेत्र इंग्लैण्ड की सीमाओं से हजार गुना अधिक है। कालिदास की रचनाएँ अमरीकी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, ब्रिटिश, जापानी, एशियाई और अफ्रीकी— साहित्यानुरागियों को समान रूप से आकर्षित करती हैं। पातंजलि योगसूत्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव विश्वभर की योगाभ्यास प्रक्रियाओं में देखा जाता है। जिन्होंने गांधी को नहीं देखा, ऐसे एशियाई,

अफ्रीकी, यूरोपीय अनेक जननेताओं को गांधी की पुस्तकें ही नई रणनीति एवं राजनीति का मार्ग दिखा रही हैं, फिर वे स्व० मार्टिन लूथर किंग हों या चेकोस्लोवाकिया के विद्रोही।

मानवीय प्रगति के प्रमुख आधारों में स्वाध्याय का विशिष्ट महत्त्व है। स्वाध्याय का अर्थ है सद्ग्रंथों का अध्ययन-मनन। मनोरंजन मात्र के लिए पढ़ी जाने वाली पुस्तकें आस्था के आधार नहीं प्रस्तुत कर पातीं। ज्ञान की जिज्ञासा का समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने वाली पुस्तकों को पढ़ना, उन पर सोचना, मनन करना ही जीवन प्रगति का आधार बनता है। ऐसी पुस्तकें व्यक्ति की पथ-प्रदर्शक गुरु बनती हैं और उनके भीतर निहित क्षमताओं को उभार कर उन्हें विकसित व्यक्तित्व का स्वामी बनाती हैं।



## उत्तम पुस्तकें जाग्रत देवता है, उनकी नियमित उपासना करें

ज्ञान की वृद्धि के लिये, ज्ञानोपासना के लिए पुस्तकों का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण आधार है। मानव जाति द्वारा संचित समस्त ज्ञान पुस्तकों में संचित है। खासकर जब से लिखने और छापने का प्रचार हुआ तब से मानव द्वारा उपलब्ध ज्ञान लिपिबद्ध करके संचित किया जाने लगा। इसलिए उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करना व्यक्ति के लिए बहुत ही आवश्यक होता है।' अच्छी पुस्तकें एक विकसित मस्तिष्क का 'ग्राफ' होती हैं। मिल्टन ने कहा है, "अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का जीवन रक्त है।" क्योंकि उसमें उसके जीवन का विचारसार सन्त्रिहित होता है। व्यक्ति मर जाते हैं लेकिन ग्रंथों में उनकी आत्मा का निवास होता है। ग्रंथ सजीव होते हैं। इसलिए लिटन ने कहा है, "ग्रंथों में आत्मा होती है। सद्ग्रंथों का कभी नाश नहीं होता।"

विकासशील जीवन के लिए पुस्तकों का साथ होना आवश्यक है, अनिवार्य है, क्योंकि पुस्तकों में ही जीवन का मार्ग-दर्शन प्रकाश स्रोत मिलता है। वस्तुतः संसार के सभी भीषण सागर में झूबते उत्तराते मनुष्यों के लिए पुस्तकें उस प्रकाश स्तंभ की तरह सहायक होती हैं जैसे समुद्र में चलने वाले जहाजों को मार्ग दिखाने वाले प्रकाशग्रह।

सिसरो ने कहा है “ग्रंथरहित कमरा आत्मरहित देह के समान है।” तात्पर्य यह है कि उत्तम पुस्तकें नहीं होने से मनुष्य ज्ञान से वंचित रह जाता है और ज्ञान रहित जीवन मुर्दे के समान व्यर्थ होता है। जो व्यक्ति दिन-रात अच्छी पुस्तकों का संपर्क प्राप्त करते हैं, उनमें मानवीय चेतना ज्ञान प्रकाश से दीप्त होकर जगमगा उठती है। ज्ञान का अभाव भी एक तरह की मृत्यु है।

उत्तम पुस्तकों में उत्तम विचार होते हैं। उत्तम विचार उदात्त भावनाएँ, भव्य कल्पनाएँ जहाँ हैं वहीं स्वर्ग है। लोकमान्य तिलक ने कहा है, “मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये रहेंगी वहाँ अपने आप ही स्वर्ग बन जाएगा।” स्वर्ग का दृश्य अस्तित्व कहीं नहीं है। मनुष्य की उत्कृष्ट मनःस्थिति जो उत्तम विचारों का फल है, वहीं स्वर्ग है। उत्तम पुस्तकों का सात्रिघ्य मनुष्य की बुद्धि को जहाँ भी मिलता है, वहीं उसे स्वर्गीय अनुभूति होने लगती है।

सच्चे, निःस्वार्थी आत्मीय मित्र मिलना कठिन है। हममें से बहुतों को इस संबंध में निराश ही होना पड़ता है। लेकिन अच्छी पुस्तकें सहज ही हमारी सच्ची मित्र बन जाती हैं। वे हमें सही रास्ता दिखाती हैं जीवन-पथ पर आगे बढ़ने में हमारा साथ देती हैं। महात्मा गांधी ने कहा है “अच्छी पुस्तकें पास होने पर हमें भले मित्रों की कमी नहीं खटकती, वरन् मैं जितना पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ उतनी ही वे मुझे उपयोगी मित्र मालूम होती हैं।”

मानव जीवन—संसार का ज्ञान असंख्यों अनेकताओं से भरा पड़ा है। मनुष्य का अपना मानस ही इतने अधिक विचारों से भरा रहता है कि क्षण-क्षण नई लहरें उत्पन्न होती रहती हैं। इन अनेकताओं का परिणाम होता है मनुष्य के अंतर बाह्य जीवन में अनेक संघर्ष। विचार संग्राम में पुस्तकें ही मनुष्य के लिए प्रभावशाली

शस्त्र सिद्ध होती हैं। एक व्यक्ति का ज्ञान सीमित एकांगी हो सकता है लेकिन उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय से मनुष्य अपने आपका सही-सही समाधान ढूँढ़ सकता है। खासकर विचारों के संघर्ष में पुस्तकें ही सहायक सिद्ध होती हैं।

पुस्तकें मन को एकाग्र और संयमित करने का सबसे सरल साधन हैं। अध्ययन करते-करते मनुष्य जीवन में समाधि अवस्था को प्राप्त कर सकता है। एक बार लोकमान्य तिलक का आपरेशन होना था। इसके लिए उन्हें क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करना था। लेकिन इसके लिए उन्होंने डॉक्टर को मना कर दिया और कहा “मुझे एक गीता की पुस्तक ला दो मैं उसे पढ़ता रहूँगा और आप आपरेशन कर लेना। पुस्तक लाई गई। लोकमान्य उसके अध्ययन में ऐसे लीन हुए कि डॉक्टरों ने ऑपरेशन किया तब तक वे तनिक हिले भी नहीं न कोई दुख ही महसूस किया। पुस्तकों के अध्ययन में ऐसे तल्लीनता प्राप्त हो जाती है, जो लबी योग-साधनाओं से भी प्राप्त नहीं होती है।

पुस्तकों के अध्ययन के समय मनुष्य की गति एक सूक्ष्म विचार लोक में होने लगती है। दृश्य जगत, शरीर यहाँ के कई व्यापार हो-हुल्लड़ भी मनुष्य उस समय भूल जाता है। सूक्ष्म विचार लोक में भ्रमण करने का यह अनिवार्य आनंद योगियों की समाधि-अवस्था के आनंद जैसा ही होता है। इस रिथ्ति में मनुष्य दृश्य जगत से उठकर अदृश्य संसार में, सूक्ष्म लोक में विचरण करने लगता है और वहाँ कई दिव्य चेतन विचारों का मानसिक स्पर्श प्राप्त करता है। यह ठीक उसी तरह है जैसे योगी दिव्य चेतना का सात्रिध्य प्राप्त करता है ध्यानावस्था में। पुस्तकों का अध्ययन ऐसा साधन है, जिससे मनुष्य अपने अंतर्बाह्य जीवन का पर्याप्त विकास कर सकता है।

मनोविकारों से परेशान, दुःखी चिंतित मनुष्य के लिए उससे दुःख-दर्द के समय उत्तम पुस्तकें अमृत हैं, जिनका सात्रिध्य प्राप्त कर वह अपना उस समय दुःख-दर्द, क्लेश सब कुछ भूल जाता है। अच्छी पुस्तकें मनुष्य को धैर्य, शांति, सांत्वना प्रदान करती हैं। किसी ने कहा है ‘सरस पुस्तकों से रोग पीड़ित व्यक्ति को बड़ी शांति मिलती है। जैसे स्नेहमयी जननी की मीठी-मीठी थपकियाँ बच्चों को मीठी नींद में सुला देती हैं वैसे ही मन या शरीर की पीड़ा को शांत करने के लिए उत्तम पुस्तकों का अवलंबन लेना सुखकर होता है।

उत्तम पुस्तकें, आदर्श-ग्रंथ बहुत बड़ी संपत्ति हैं। अपनी संतति के लिए उत्तराधिकार में छोड़ने के लिए सर्वोपरि मूल्यवान् वस्तु है संसार में जो अभिभावक अपनी संतान के लिए धन, वस्त्र, सुख, आमोद-प्रमोद के साधन न छोड़कर उत्तम पुस्तकों का संग्रह छोड़ जाते हैं, बहुत बड़ी संपत्ति छोड़ते हैं, क्योंकि उत्तम ग्रंथों का अध्ययन करके मनष्य, ऋषि, देवता महात्मा, महापुरुष बन सकता है। जिन परिवारों में ज्ञानार्जन का क्रम पीढ़ियों से चलता रहता है, उनमें से पंडित, ज्ञानी, विद्वान् अवश्य निकलकर आते हैं। जहाँ उत्तम पुस्तकें होती हैं, वहाँ मानों देवता निवास करते हैं। वह स्थान मंदिर है, जहाँ पुस्तकों के रूप में मूक किंतु ज्ञान के चेतनायुक्त देवता निवास करते हैं। वे 'माता-पिता' धन्य हैं जो अपनी संतान के लिए उत्तम पुस्तकों का एक संग्रह छोड़ जाते हैं क्योंकि धन, संपत्ति, साधन सामग्री तो एक दिन नष्ट होकर मनुष्य को अपने भार से डुबो भी सकती हैं किंतु उत्तम पुस्तकों के सहारे मनुष्य भवसागर का भयंकर लहरों में भी सरलता से तैरकर उसे पार कर सकता है।

जीवन में अन्य सामग्री की तरह हमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह करना चाहिए। जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले, विविध विषयों के उत्तम ग्रंथ खरीदने के लिए खर्च के बजट में सुविधानुसार आवश्यक राशि रखनी चाहिए। कपड़े, भोजन, मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिए भी आवश्यक खर्च की तरह ध्यान रखना चाहिए। स्मरण रखिए उत्तम पुस्तकों के लिए खर्च किया जाने वाला पैसा उसी प्रकार व्यर्थ नहीं जाता जिस तरह अंधेरे वियावान जंगल में प्रकाश के लिए खर्च किया जाने वाला धन।

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। वह यह कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिए अथवा प्रदर्शनी लगाने के लिए न खरीदी जाएँ वरन् उनका नियमित अध्ययन जीवन के अन्य कार्यक्रमों की तरह ही आवश्यक अंग बना लेना चाहिए। उनसे अधिकाधिक लोगों को ज्ञान मिले, अध्ययन की प्रेरणा मिले ऐसी सुविधा जुटाते रहना चाहिए। पुस्तकों की उपयोगिता अध्ययन से ही है। अन्यथा वे कीड़ों का भोजन बनने के सिवा कुछ नहीं रहतीं। नई पुस्तकें खरीदना उनका अध्ययन करना उनको अधिकाधिक उपयोग में लाना ही पुस्तकों की सच्ची कद्द करना है।

स्मरण रखिए पुस्तकें जागृत देवता हैं; उनके अध्ययन, मनन, चिंतन के द्वारा पूजा करने पर तत्काल ही वरदान पाया जा सकता है। हमें नियमित रूप से सद्ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए। उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन का आवश्यक कर्तव्य बना लेना चाहिए। पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाए—

स्वाध्याय की महिमा अतुल है, जिसने पढ़ने का महत्व जान लिया, उसने सौभाग्य का द्वार पा लिया। जिसने विचार की आवश्यकता अनुभव कर ली, उसने विकास का आधा पथ पार कर लिया, यह जानना चाहिए। ‘स्वाध्याय से बढ़कर आनंद कुछ नहीं’ (गांधीजी) और “मुझे नरक में भेज दो वहाँ भी स्वर्ग बना दूँगा, यदि मेरे पास पुस्तकें हों” (लोकमान्य टिलक)—इन दोनों मूर्धन्य महापुरुषों ने ज्ञान की महत्ता उपरोक्त शब्दों में गाई है।

डनफर्मलाइन (स्काटलैंड) में एक बालक जन्मा। उसकी माँ केक बनाती थी और एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर, उन्हें बेचा करती थी। पिता फेरी लगाता था, शाम को उतने पैसे मिल जाते थे, जितने से तीनों प्राणी पेट भर लेते थे और आधे फटे कपड़े पहन लेते थे। गरीबी से दुःखी लड़का एक दिन घर से भाग गया और अमेरिका पहुँचकर एक इस्पात कंपनी में चपरासी हो गया। काम उतना था नहीं, इसलिए अपने साहब की अलमारी से कोई किताब निकाल लेता और पढ़ने लगता और कर्मचारी आते और उसे बातचीत में लगाना चाहते पर वह उन्हें किसी न किसी बहाने से टरका देता और फिर अपने पढ़ने में लग जाता। वह इतनी तत्त्वीनता से पढ़ता कि पुस्तक की अधिकांश बातें एक पाठन में ही याद हो जातीं।

एक दिन एक मीटिंग थी। कोई प्रश्न आ पड़ा उसे मैनेजिंग डाइरेक्टर भी सुलझाने में असमर्थता अनुभव कर रहे थे। वह लड़का पास ही खड़ा था, उसने एक किताब उठाई बीच में से शीघ्रता से एक पृष्ठ खोलकर डाइरेक्टर के आगे बढ़ा दिया। यही वह उत्तर था, जिसकी खोज हो रही थी। बालक की इस असाधारण प्रतिभा से सब हक्के-बक्के रह गए। वह बालक अपनी बुद्धि से उस उद्योग की तमाम तकनीक सीख गया और एक दिन करोड़पति होकर एंडर्स कार्नेगी के नाम से विख्यात हुआ। वह श्रेय—जिसने उसे जमीन से

उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया—उसकी स्वाध्याय बुद्धि को ही दिया जा सकता है।

एक और वैसा ही निर्धन बालक दक्षिण भारत में भी हुआ है, जिसे अपनी स्वाध्याय की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए सड़कों में जलने वाली बत्तियों के नीचे पढ़ना पड़ता था। किताबें खरीदने के लिए पैसे नहीं होते थे, इसलिए वह भी पुस्तकालय की शरण लेता था। इस तरह उसने ज्ञानवृद्धि की साधना सतत जारी रखी और एक दिन उसकी बौद्धिक प्रतिभा इस योग्य हुई कि ब्रिटिश सरकार ने उसे मद्रास हाइकोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त किया। वह बालक—सर टी० एस० मुत्तुस्वामी अथव पहले भारतीय थे, जिनको इस तरह का महत्वपूर्ण पद प्रदान किया गया।

ज्ञानार्जन के इस लाभ को जिसने भी समझा, वह गई-गुजरी स्थिति से निकलकर कुछ से कुछ हो गया। ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं, जिनसे पुस्तकालयों की उपयोगिता का पता चलता है। संपन्न घरों के लोगों को तो पुस्तकों की कोई कमी नहीं रहती पर एक साधारण नागरिक को जिसे ज्ञान वृद्धि और व्यक्तित्व के विकास की इच्छा होती है, उनके लिए पुस्तकालय ही उपयोगी माध्यम है। उनसे हजारों व्यक्ति संपन्न परिवार की तरह अपनी ज्ञानार्जन पिपासा शांत कर लेते हैं और इस तरह समाज के सैंकड़ों लोग जो विचार और बौद्धिक क्षमता के अभाव में आगे बढ़ने से रह जाते हैं—अपनी उन्नति के लिए भी मार्ग खोज लेते हैं।

इस तथ्य को कनाडा ने अनुभव किया। कनाडा तब निर्धन देश था, जिन दिनों की बात कह रहे हैं। अभी पौने दो-सौ वर्ष ही हुए होंगे, वहाँ शिक्षा की बड़ी कमी थी। सरकार ने बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी पर जो शेष नागरिक थे, क्या उन्हें इसी स्थिति पर पड़ा रहने दिया जाए, यह एक गंभीर समस्या थी। उधर उद्योगों के लिए भी कुछ शिक्षित लोगों की आवश्यकता अनुभव की गई। वहाँ के नेताओं ने परस्पर विचार किया और सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया। जो बालक पढ़ रहे थे, उन्हें बीच में पढ़ाई छुड़ाकर धंधों में लगा दिया जाता था, इस बीच वे पुस्तकालयों में जाकर ज्ञानार्जन करते रहते थे, क्रम न टूटने पाता था। कुछ वर्ष बाद उन्हें फिर से विशेष हाईस्कूलों में शिक्षा दी जाती थी। वयस्क हो जाने पर फिर उन्हें पुस्तकालयों में पढ़ने के लिए पुस्तकें दी

जाती थीं। अधिक से अधिक सेवा के लिए वहाँ लाइब्रेरियनों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था बनाई गई। कुशल पुस्तकालयाध्यक्षों के मार्गदर्शन में लोगों को अपने व्यक्तित्व के विकास को समुचित अवसर मिला और कनाड़ा देखते ही देखते दुनियाँ के समृद्ध और विकसित देशों की पंक्ति में जा खड़ा हुआ।

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० आर० रंगनाथन ने एक बार जापान की यात्रा की। ओसाका में उन्होंने एक स्थान पर बाहर कतार में खड़े लोगों को पुस्तकें पढ़ते देखा। पढ़ने वालों की अधिक संख्या देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, उन्होंने वहाँ जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह एक पुस्तकालय है, जहाँ प्रतिदिन लोग भारी संख्या में पुस्तकें पढ़ने आते हैं। पूछने पर पुस्तकालय के अध्यक्ष ने बताया कि यह पुस्तकालय ३० वर्ष पहले बना था। तब थोड़े-से आदमियों के आने का अनुमान था, इसलिए उतने ही स्थान की व्यवस्था की गई थी। अब लोग बहुत अधिक आते हैं, इसीलिए सीट रिजर्व कर दी गई है। जिनका नंबर नहीं आता वे लोग अपनी अध्ययन की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए बाहर खड़े होकर पढ़ते हैं। हम इस कमी को दूर करने के प्रयत्न में हैं।

जापानी लोगों की इस स्वाध्याय वृत्ति से वहाँ के जीवन में क्या कोई क्रांति हुई है? इस प्रश्न पर विचार करें तो मालूम होगा कि जापान ने इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि वह एशिया के विकसित देशों में अपना प्रथम स्थान रखता है।

धन कमाना कोई बड़ी बात नहीं है। पढ़-लिखे और विचारवान् व्यक्तियों के लिए तो वह सबसे छोटी समस्या है। ज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन में शांति और सामाजिक जीवन में सभ्यता और व्यवस्था लाना है, वह भी शिक्षा और ज्ञान के अभाव में पूरा नहीं हो सकता। इसलिए पढ़ना सब दृष्टि से आवश्यक है। पुस्तकालय एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ औसत नागरिक भी अधिकतम ज्ञान और विचार अर्जित कर सकता है।

पुस्तकालय समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्य को भोजन, कपड़े और आवास की व्यवस्था हो जाती है तो वह जिंदा रह जाता है, शेष उन्नति तो वह उसके बाद सोचता है। समाज यदि विचारशील है तो वह शांति और सुव्यवस्था की अन्य आवश्यकताएँ

बाद में भी पूरी कर सकता है, इसलिए पुस्तकालय समाज की पहली आवश्यकता है, क्योंकि उससे ज्ञान और विचारशीलता की सर्वोपरि आवश्यकता की पूर्ति होती है, किंतु इतना ही काफी नहीं है कि एक स्थान पर पुस्तकें जमा कर दी जाएँ, उनके विषय चाहे जो कुछ हों।

गंदे और दूषित विचार देने वाली पुस्तकों से तो अनपढ़ अच्छा जो बुराई करता है पर बढ़ाता नहीं। जितनी बुराइयाँ बन चुकी हैं, उन्हीं तक सीमित रह जाता है। यथार्थ की आवश्यकता की पूर्ति उन पुस्तकों से होती हैं, जो प्रगतिशील विचार दे सकती हैं। जो समस्याएँ हल कर सकती हैं, जो नैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक, सामाजिक और विश्वबंधुत्व की प्रेरणाएँ और शिक्षाएँ भी दे सकती हैं।

एक बार इंग्लैंड में भी ऐसी ही क्रांति उठी थी। वहाँ भी जनता के लिए स्थान-स्थान पर पुस्तकालय स्थापित किए गए। काफी समय तक इसमें अधिक कोई दिलचस्पी न ली गई पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय शासनाध्यक्षों ने पाया कि चारित्रिक और नैतिक दृष्टि से इंग्लैंड का स्तर बहुत नीचे गिर गया है। उसके कारणों की विस्तृत खोज-बीन की गई तो यह पाया गया कि वे पुस्तकालय ही इसके कारण हैं, जिन्हें जनता के बौद्धिक विकास के लिए स्थापित किया गया था। हुआ यह कि वहाँ के अधिकांश युवकों ने उपन्यास और कामोत्तेजक साहित्य में ही ज्यादा रुचि ली। सृजनात्मक साहित्य उपेक्षित पड़ा रहा। जैसे विचार लोगों ने पढ़े वैसी ही मनोवृत्ति बनती गई।

अब वहाँ एक योजना बनाई गई। पुस्तकालयाध्यक्ष प्रशिक्षित किये गए और उन्हें बताया गया कि यदि कोई स्त्री पुस्तक लेने आती है तो पहले यह पूछो कि उसकी समस्याएँ क्या हैं? उदाहरणार्थ यदि वह कम शिक्षित है तो उसे हल्की-फुल्की साहस और नैतिकता की पुस्तकें पढ़ने को दो और यह भी कहो कि वह यह कहानियाँ बच्चों को भी सुनाया करे। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षित स्त्री है तो उसे बाल-समस्या, बाल-कल्याण, परिवार मनोविज्ञान की पुस्तकें दो। इस योजनाबद्ध तरीके से वहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नए-नए अनुसंधान प्रारंभ हुए। अंग्रेजी साहित्य ही आज एकमात्र ऐसा साहित्य है, जिसमें मनुष्य जीवन के किसी भी पहलू पर विचार और शोध—ज्ञानकारियाँ मिल सकती हैं, यह उसी योजनाबद्ध 'पुस्तकें पढ़ाओ' अभियान का चमत्कार है। वहाँ

८० प्रतिशत से भी अधिक लोग पुस्तकालयों का लाभ उठाते हैं। जहाँ पुस्तकें नहीं हैं, वहाँ भी चल-पुस्तकालयों द्वारा पुस्तकें पहुँचाई जाती हैं।

इससे लोगों की सुख-समृद्धि का द्वार खुल गया। बैकबेल नामक एक गाँव के एक युवक ने पुस्तकालय में उपलब्ध 'इलैक्टॉनिक्स' की तमाम पुस्तकें पढ़ीं, वह बेरोजगार था। इन पुस्तकों के सहारे वह रेडियो बनाना सीख गया, यहीं नहीं रेडियो इंजीनियरी की भी बहुत-सी तकनीकें उसने सीखीं। इंग्लैंड का औसत नागरिक विश्व समस्याओं, परिस्थितियों और ज्ञान-विज्ञान से लेकर छोटे-छोटे उद्योगों तक की इतनी जानकारी रखता है, जितनी भारतवर्ष का एम० ए० उत्तीर्ण छात्र भी नहीं जानता होगा, यह सब उनकी स्वाध्याय वृत्ति का ही प्रतिफल है।

यह छोटे उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि मस्तिष्क को संस्कारवान् और ज्ञान से परिपूर्ण कर लेने पर मनुष्य व्यक्तिगत उन्नति ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय समृद्धि का भी द्वार खोलता है। इन लाभों को देखते हुए भारतवर्ष में भी पुस्तकालयों का जाल बिछाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है। यदि कुछ विचारवान् व्यक्ति अथवा राजनैतिक नेता इसे एक अभियान का स्वरूप प्रदान कर दें तो देश देखते-देखते धरती से आकाश में पहुँच सकता है।



## अपने रहने की दुनियाँ आप बनाएँ

जिस दुनियाँ में हम रहते हैं उसमें श्रेष्ठता प्रयत्नपूर्वक तलाश करनी पड़ी है। निकृष्टता के तो हर दिशा में पहाड़ दिखाई देंगे। नैतिक, पराभव और पतन की परिस्थितियाँ मक्खी-मच्छरों की तरह उपजती, बढ़ती रहती हैं, पर उपयोगी प्राणियों को तो प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ना और पालना पड़ता है। ओछापन, ओछी परिस्थितियों की ओर आकर्षित होता है। सुसंस्कृत मनुष्य सदा अल्पमत में रहे हैं, फिर श्रेष्ठता का प्रभाव क्षेत्र भी उतना विस्तृत नहीं होता जितना निकृष्टता

का। पानी नीचे की ओर बहता है और मनुष्य की पशु-प्रवृत्तियाँ उसे नीचे की ओर धकेलती ही नहीं, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की तरह अपनी ओर घसीटती भी हैं। सामान्य बुद्धि को सांसारिक विकृतियाँ ही प्रभावित करती हैं।

संकीर्ण स्वार्थपरता का इन दिनों दौर-दौरा है। आदर्शों की ओर कदम बढ़ाने की अपेक्षा लोग निकृष्ट क्रिया-कृत्यों की ही बात सोचते हैं। उज्ज्वल भविष्य की निर्माण करने की अपेक्षा लोगों को तात्कालिक लाभ कमाने में अधिक रुचि है। भले ही उसके लिए अनीति का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़ता हो। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि धूर्तों में से कितने ही सफल और सुसंपन्न भी दीखते हैं। अस्तु सहज ही सामान्य बुद्धि का रुझान नीतिमत्ता की दूरदर्शिता अपनाने की अपेक्षा—किसी भी उपाय से तुरंत लाभान्वित होने की ओर ही होता है। दृष्टि पसारकर हम अपने चारों ओर ऐसा ही वातावरण छाया देखते हैं। उसका प्रभाव भी पड़ता है। बहुमत का अनुकरण मनुष्य की एक ऐसी ही दुर्बलता है, जिसे कठिनाई से ही रोकना और बदलना संभव हो पाता है।

श्रेष्ठता की दिशा में चलना हो, यदि उत्कृष्टता और आदर्शवादिता को लक्ष्य बनाना हो तो भी उसके लिए प्रेरक वातावरण बनाना पड़ेगा। ऐसा परिकर जहाँ हो वहाँ रहने का भी प्रभाव पड़ता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों का निकटवर्ती वातावरण संपर्क में आने वालों को प्रभावित करता है और उसकी गतिविधियों में उपयोगी परिवर्तन प्रस्तुत करता है। पर ऐसा वातावरण हर जगह—हर किसी के लिए कहाँ उपलब्ध होता है ? फिर उसमें रह सकने की परिस्थितियाँ कितनों को उपलब्ध होती हैं ? जनसाधारण को तो आजीविका उपार्जन एवं परिवार पोषण के क्रिया-कृत्यों में ही व्यस्त रहना पड़ता है। दो-पाँच दिन कहीं चले भी जाएँ तो उतने भर से काम भी क्या बनेगा ? अधिक दिन सत्संग का लाभ लेने के लिए जा सकना आर्थिक तथा दूसरे कारणों से कहाँ बन पाता है ?

ऐसी दशा में श्रेष्ठता की दशा में अग्रसर कर सकने वाला प्रभावोत्पादक वातावरण अपने आप ही बनाना पड़ता। मस्तिष्क पर छाया छोड़ने वाला एक ऐसा समानांतर संसार विनिर्मित करना होता है जो स्वार्थ संलग्न दुनियाँ के प्रभाव को निरस्त कर सके। यह

निर्माण प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष ही हो सकता है। स्वाध्याय और चिंतन के सहारे यह निर्माण खड़ा किया जा सकता है। अपनी रुचि के भविष्य का मार्गदर्शन कर सकने वाले जीवन-चरित्रों का संग्रह करना चाहिए। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और उनमें जो प्रेरक प्रसंग हों—अपनी वर्तमान परीस्थितियाँ कार्यान्वित हो सकने योग्य हों, उन्हें अलग से नोट कर लेना चाहिए। जब भी अवकाश मिले उन प्रसंगों के कल्पना चित्र मस्तिष्क में एक सुनियोजित फ़िल्म की तरह प्रस्तुत करने चाहिए। श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हुए समुन्नत स्थिति तक पहुँचे हुए महामानवों की जीवनियाँ, गतिविधियाँ, नीतियाँ यदि अपने कल्पना लोक में दृढ़तापूर्वक जड़ें जमा सकें और अनायास ही स्मरण आती रहें तो समझना चाहिए कि बाहरी दुनियाँ के पतनोन्मुख प्रभाव को निरस्त कर सकने वाला स्वनिर्मित वातावरण बनकर तैयार हो गया।

अपनी मानसिक दुर्बलताएँ अभ्यस्त आदतें—विकृत-अभिरुचियाँ निकृष्टता की ओर खींचती हैं। कुटुंबियों के स्वार्थ, भित्रों के दबाव तथा चाल लोक प्रवाह अपनी संयुक्त शक्ति से सामान्य मनुष्य को वैसी ही गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं जैसी कि दुनियाँदारों ने अपना रखी हैं। श्रेष्ठता की प्रेरणा भर देने वाले और उत्कृष्टता की ओर बढ़ चलने का मार्गदर्शन करने वाले प्रेरक प्रसंगों को तो इतिहास के पृष्ठों पर ही खोजा जा सकता है। आज भी वैसे जो लोग हैं, उनके साथ मानसिक संबंध ही बनाया जा सकता है। न तो अपने लिए उनके पास निरंतर रहना संभव है और न वे ही अपना निवास अपने पड़ोस में बना सकते हैं। व्यावहारिक मार्ग एक ही है कि अपनी एक भावनात्मक दुनियाँ अलग ही बसाई जाए जिसमें श्रेष्ठ महामानवों की ही निवास करने के लिए आमंत्रित किया जाए। उसमें प्रेरणाप्रद घटनाओं की हलचलें ही दृष्टिगोचर होती रहें, भले ही वे आज की न होकर भूतकाल में ही घटित क्यों न हुई हों। यही बात परामर्श के संबंध में भी है। श्रेष्ठ सज्जनों से वातालाप कर सकना उनके साहित्य द्वारा बड़ी सरलतापूर्वक संभव हो सकता है। जीवित लोगों से परामर्श करने के लिए उनके पास जाने और उन्हें अवकाश होने न होने की भी कठिनाई आती है, पर स्वाध्याय के माध्यम से तो यह सुविधा हर घड़ी उपलब्ध हो सकती है। जिस भी महामानव से कुछ पूछताछ करनी हो उसके साहित्य में से अपने काम के प्रसंग

दूँढ़ने और पढ़ने का कार्य कठिन नहीं सरल है। वह अपनी सुविधा के समय कभी भी किया जा सकता है।

प्रस्तुत समस्याओं का समाधान और प्रगति पथ पर अग्रसर होने का पथ प्रदर्शन कर सकने वाली पुस्तकें खरीदने के लिए कुछ बजट नियत रखना चाहिए। शरीर और परिवार पर ढेरों समय और धन खर्च किया जाता है। यदि मन और अंतःकरण का मूल्य महत्व समझा जा सके तो उनके परिपोषण पर कुछ खर्च करते रहना भी आवश्यक प्रतीत होगा। अनुपयोगी समझी जाने वाली बातों की उपेक्षा करनी पड़ती है और उन्हीं के लिए पैसे तथा समय की कमी का बहाना खोजना पड़ता है। महत्वपूर्ण समझे जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो प्राथमिकता एवं प्रमुखता ही मिलती है। यदि बौद्धिक एवं भावना क्षेत्र का महत्व समझा जा सके और उसके परिष्कृत होने पर मिलने वाले लाभों की कल्पना की जा सके तो निश्चय ही उस प्रयोजन के लिए नियमित रूप से कुछ धन और समय लगाते रहने में तनिक भी कठिनाई प्रतीत न होगी। स्वास्थ्य को आहार के समतुल्य ही महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए।

ऐसा सत्साहित्य समीपवर्ती पुस्तकालयों में भी मिल सकता है। थोड़ी मासिक फीस देते रहने पर उसकी सुविधा हो सकती है। सही रूप में वापिस लौटाने का विश्वास दिलाया जा सके तो अन्य उदार स्वाध्यायशील व्यक्ति भी अपनी पुस्तकें पढ़ने को दे सकते हैं। सरसरी नजर से पढ़ने और पुस्तकें एक ओर पटकते जाने से बहुपरित होने का दावा तो किया जा सकता है, पर वह लाभ नहीं मिल सकता जो स्वाध्यायशीलों को मिला करता है। आवश्यक है कि प्रेरक-प्रसंगों और संदर्भों की नोटबुक बनाकर रखी जाए और जो हृदयग्राही लगा हो उसे उसमें नोट करते चला जाए। यह संकलन निश्चय ही समुद्र मंथन के फलस्वरूप निकले हुए रत्नों की तरह बहुमूल्य होगा। इस संग्रह को अवकाश के समय बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए और यह सोचा जाए कि इन प्रसंगों के अनुरूप कदम बढ़ा सकना किस प्रकार संभव हो सकता है? सद्‌विचारों को व्यवहार में उतारने में क्या कठिनाई पड़ेगी और उसका किस सीमा तक निराकरण संभव हो सकता है?

स्वाध्याय से मार्गदर्शन मिलता है। घटनाएँ सामने आती हैं और परामर्श मिलते हैं। पर बात इतने भर से ही नहीं बन जाती। सोचना यह

भी होगा कि प्रगति पथ पर चलना आज की स्थिति में कितना और किस प्रकार सुलभ हो सकता है? योजना तो हर काम की बनानी पड़ती है। उसके बिना तो छुट-मुट दैनिक कार्य भी नहीं हो पाते। कृषि-व्यापार आदि में योजनाबद्ध कदम उठाते हैं। सरकारें तो योजना निर्माण विभाग पर ढेरों साधन खर्च करती हैं। जीवन विकास की प्रक्रिया भी अनायास ही नहीं बन जाती और इस दिशा की प्रगति जादू की छड़ी घुमाने भर से संभव नहीं हो सकती। अनभ्यस्त को अभ्यास में उतारना निश्चय ही एक बड़ी बहादुरी का काम है। ढर्र को बदलकर नए सिरे से कोई नए आधार खड़े करने में सुदृढ़ संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इस परिवर्तन में आने वाली कठिनाइयों की कल्पना करनी पड़ती है और उनके निवारण करने के उपाय खोजने होते हैं किस क्रम से, क्या कदम कब उठाए जाएँ और किस तरह लंबी मंजिल को निश्चय और साहस के साथ पूरा किया जाए, इसकी सुव्यस्थित रूपरेखा बनाकर चखने से ही अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है।

श्रेष्ठता के मार्ग पर चलन के सत्परिणामों की कल्पना करने से उत्साह बढ़ता है और उस दिशा में उत्कंठा प्रबल होती है। मात्र कठिनाई और हानि की बात सोचते रहने से मन छोटा पड़ता है और अचेतन उसे टालने या अस्वीकार करने की भूमिका बना देता है, फलतः सपने ज्यों के त्यों धरे रह जाते हैं। कल्पनाएँ तो उठती हैं, पर ऐसे ही पानी के बुद्बुदों की तरह दूसरे ही क्षण समाप्त हो जाती हैं। महामानवों ने आदर्शवादिता को दृढ़तापूर्वक अपनाए रहने पर अंततः जिन सत्परिणामों को प्राप्त किया है। उन पर विचार करने और अपनी स्थिति भी कभी उन्हीं जैसी ही जाने का कल्पना-चित्र यदि मनःक्षेत्र पर अधिक स्पष्ट रूप से उतारा जा सके तो उससे निश्चय ही उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलेगी और उधर कदम उठाने का साहस बढ़ेगा।

तत्काल थोड़ा-सा लाभ उठाने के प्रलोभन में भविष्य को अंधकारमय बना देने वाले लोगों के वृत्तांत तो अपने इर्द-गिर्द ही खोजे जा सकते हैं। उनके लिए इतिहास पढ़ने या साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने जिस-तिस तरह कमाया तो बहुत पर वह दुर्व्यसनों में गँवाते रहे। जो बचा उसे कुपात्रों ने हड़प लिया। इन कुपात्रों में ठग, तस्कर भी हो सकते हैं और तथाकथित प्रियजन भी। उपयोगी वह—जिससे हितसाधन हो

सके। अनुदान वह—जिससे सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ सकें। इन कसौटियों पर जो खरा नहीं उतरा वह उपयोग और अनुदान अबुद्धिमत्तापूर्ण ही माना जाएगा। ऐसी ही विडंबनाओं में उलझा और नष्ट हुआ जीवन किस प्रकार सफल कहा जाएगा। ओछा हेय एवं निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हुए किसी प्रकार मौत के दिन पूरे कर लेने में क्या समझदारी रही? उचित और उपयुक्त यही है कि इस सुर दुर्लभ अवसर का ऐसा उपयोग किया जाए जिससे आत्म-गौरव बढ़े—अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत हो—लोकश्रद्धा बरसे और ईश्वर की प्रसन्नता का आनंद मिले। यह सार्थकता श्रेष्ठता के सम्मान पर चलने से ही संभव हो सकती है। स्पष्ट है कि ऐसे अवसर उन्हीं को मिलते हैं जिन्होंने अपने लिए एक आदर्शवादी प्रेरणाओं से भरा-पूरा भावनामय संसार अपने ही हाथों से गढ़ा और खड़ा किया है।

### उत्कृष्ट विचारों का सतत सान्निध्य रहे—

सद्विचारों की महत्ता का अनुभव तो हम करते हैं पर उनकी दृढ़ता नहीं रह पाती। जब कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते या सत्संग, प्रवचन सुनते हैं तो इच्छा होती है कि इसी अच्छे मार्ग पर चलें। पर जैसे ही वह प्रसंग पलटा कि दूसरी प्रकार के, पूर्व अभ्यास, विचार पुनः मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेते हैं और वही पुराना घिसा-पिटा कार्यक्रम पुनः चलने लगता है। इस प्रकार उत्कृष्ट जीवन बनाने की आकांक्षा एक कल्पना मात्र बनी रहती है, उसके चरितार्थ होने का अवसर प्रायः आने ही नहीं पाता।

कारण यह है कि अभ्यस्त विचार बहुत दिनों से मस्तिष्क में अपनी जड़ जमाए हुए हैं, मन उनका अभ्यस्त भी बना हुआ है। शरीर ने एक स्वभाव एवं ढर्रे के रूप में उन्हें अपनाया हुआ है। इस प्रकार उन पुराने विचारों का पूरा आधिपत्य अपने मन और शरीर पर जमा हुआ है। यह आधिपत्य हट और नए उत्कृष्ट विचार वह स्थान ग्रहण करें तो ही यह संभव है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अंतःकरण चतुष्टय बदले। जब अंतः भूमिका बदलेगी तब उसका प्रकाश बाह्य कार्यक्रमों में दृष्टिगोचर होगा। परिवर्तन का यही तरीका है।

उच्च विचारों को बहुत थोड़ी देर हमारी मनोभूमि में स्थान मिला है। जितनी देर सत्संग, स्वाध्याय का अवसर मिलता है उतने थोड़े समय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं। इसके बाद

वही पुराने कुविचार औँधी-तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ाकर एक ओर भगा देते हैं। निकृष्ट विचारों में तात्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है, चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ें भी बहुत गहरी हो जाती हैं। इन्हें उखाड़कर नए श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना सचमुच बड़े अध्यवसाय का काम है।

किसी घने जंगल में कंटीली झाड़ियाँ सारी भूमि को घेरे रहती हैं, गहराई तक अपनी, जड़ें जमाए रहती हैं। यदि उस जंगल को कृषि योग्य बनाना हो तो वह झाड़-झाड़ काटने की व्यवस्था करनी पड़ती है। फिर भूमि खोदकर जड़ें उखाड़नी पड़ती हैं। जोतकर खेत को एक समान करना पड़ता है। खाद और पानी की व्यवस्था जुटानी होती है। इतना प्रबंध करने पर ही वह घने जंगल की ऊबड़-खाबड़ भूमि परिपूर्ण अन्न उपजाने वाली कृषि भूमि के योग्य बन पाती है। मनोभूमियों को सत्कर्मों की, सद्भावनाओं की हरी-भरी फसल उगने योग्य बनाने के लिए ऐसा ही पुरुषार्थ किया जाना आवश्यक होता है।

दस-पाँच मिनट कुछ पढ़ने, सुनने या सोचने, चाहने से ही परिष्कृत मनोभूमि का बन जाना और उसके द्वारा सत्कर्मों का प्रवाह बहने लगना कठिन है। इसलिए क्रमबद्ध, योजनाबद्ध, दीर्घकालीन और सुस्थिर प्रयत्न करना होता है। फैलाया हुआ पानी नीचे की ओर आसानी से बिना प्रयत्न के बहने लगता है। पर यदि उसे ऊपर पहुँचाना हो तो इसके लिए कई उपकरण जुटाने की व्यवस्था की जाती है। बिना विशेष प्रयत्नों के पानी ऊपर नहीं चढ़ सकता है। इसी प्रकार स्वत्प्रयत्नों से मनोभूमि का परिवर्तन भी संभव नहीं और बिना आंतरिक परिवर्तन के बाह्य जीवन में श्रेष्ठता की स्थापना हो ही कैसे सकती है ?

जैसे विचारों को जितनी तीव्रता और निष्ठा के साथ जितनी अधिक देर मस्तिष्क में निवास करने का अवसर मिलता है, वैसे ही प्रभाव की मनोभूमि में प्रबलता होती चलती हैं। देर तक स्वार्थपूर्ण विचार मन में रहें और थोड़ी देर सद्विचारों के लिए अवसर मिले, तो वह अधिक देर रहने वाला प्रभाव कम समय वाले प्रभाव को परास्त कर देगा। इसलिए उत्कृष्ट जीवन की वास्तविक आकांक्षा करने वाले के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि मन में अधिक समय तक अधिक प्रौढ़, अधिक प्रेरणा प्रद उत्कृष्ट कोटि के विचारों को स्थान मिले।

जिसका बहुमत होता है उसकी जीत होती है। बहती गंगा में यदि थोड़ा मैला पानी पड़ जाए तो उसकी गंदगी प्रभावशाली न होगी, पर यदि गंदे नाले में थोड़ा गंगाजल डाला जाए तो उसे पवित्र न बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि मन में अधिक समय तक बुरे विचार भरे रहेंगे तो थोड़ी देर थोड़े-से अच्छे विचारों को स्थान देने से भी कितना काम चलेगा ? उचित यही है कि हमारा अधिकांश समय इस प्रकार बीते, जिससे उच्च भावनाएँ ही मनोभूमि में विचरण करती रहें।

संसार में बुराई इसलिए फैली है कि लोगों के मन में बुरे विचारों का बाहुल्य रहता है। चोर, डाकू, जुआरी, व्यभिचारी, व्यसनी अपने विचारों के पक्के होते हैं। जो उन्हें ठीक जँच गया है, उसी इच्छा की पूर्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करते हैं। निष्ठा के अनुरूप काम करने से भावनांतर में परिपक्वता आती है और उस परिपक्वता में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता भरी रहती है।

शराबी अपने विचारों में पक्का होता है। बदनामी, धनहीनता और स्वास्थ्यनाश की परवाह न करके भी वह शराब पीता है। मन और कर्म की इस एकता से जो दृढ़ता उसमें रहती है, उसके फलस्वरूप कई अन्य कमजोर प्रकृति के मनुष्य भी उसके प्रभाव में आकर शराब पीना सीख जाते हैं। चरित्र शिक्षण की यही पद्धति सफल होती है। बुरे स्तर के व्यक्ति अपनी बुराईयों में तन्मय रहकर दूसरे अनेकों को अपना साथी बनाते और बुराई सिखाते हैं।

बुराई की ही भाँति अच्छाई में भी अपनी शक्ति एवं विशेषता होती है। पर वह प्रभावशाली तभी बनती है, जब मन वचन और कर्म में एकता हो। यदि प्रौढ़ और परिपक्व आचरण के श्रेष्ठ व्यक्ति कभी प्रकाश में आते हैं तो उनसे भी अगणित लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं। गॉंधी का प्रभाव अभी पिछले ही दिनों हम लोगों ने आँखों से देखा है। उनकी प्रेरणा से अगणित व्यक्तियों की भावनाएँ बदली और लाखों व्यक्तियों ने हँसते-हँसते भारी बलिदान की जोखिम उठाई।

अच्छाई इसीलिए पनप नहीं पाती कि उसका शिक्षण करने वाले ऐसे लोग नहीं निकल पाते जो अपनी एक निष्ठा के द्वारा दूसरों की अंतरात्मा पर अपनी छाप छोड़ सकें। अपने अवगुणों को छिपाने के लिए या सस्ती प्रशंसा प्राप्त करने के लिए धर्म का आडंबर मात्र ओढ़ लेते हैं। 'पर उपदेश कुशल' बहुत हैं पर जो आदर्शों को दैनिक

जीवन में कार्यान्वित करें ऐसे लोग कम हैं। यही कारण है कि अच्छाई बढ़ नहीं पाती, फैल नहीं पाती। यदि सज्जनतापूर्ण सच्चे व्यक्तित्व प्रकाश में आने लगें तो उनके प्रभाव से अच्छाइयाँ भी तेजी से फैलें। बुराई का स्थान अच्छाई को मिल जाए और युग परिवर्तन की बात कुछ भी कठिन दिखाई न दे।

उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ विचारों को अधिकाधिक समय तक हमारे मस्तिष्क में स्थान मिलता रहे ऐसा प्रबंध यदि कर लिया जाए तो कुछ ही दिनों में अपनी इच्छा, अभिलाषा और प्रवृत्ति उसी दिशा में ढल जाएगी और बाह्य जीवन में वह सात्त्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा। विचारों की शक्ति महान है, उससे हमारा जीवन तो बदलता ही है संसार का नक्शा भी बदल सकता है।

कैसा अच्छा होता कि प्राचीनकाल की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत करने वाले साधु, ब्राह्मण आज भी हमें उपलब्ध रहे होते। वे अपने उज्ज्वल चरित्र, सुलझे हुए मस्तिष्क और परिपक्व ज्ञान द्वारा सच्चा मार्ग दर्शन करा सकते तो कुमार्ग पर ले जाने वाली सभी दुष्प्रवृत्तियाँ शमन होतीं। पर आज उनके दर्शन दुर्लभ हैं। जो देश काल पात्र की स्थिति का ध्यान रखते हुए आज के बुद्धिवादी एवं संघर्षमय युग के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करके जीवन को ऊँचा उठाने वाले व्यावहारिक सुझाव दे सकें, आज ऐसे मनीषी कहाँ हैं? उनका अभाव इतना अखरता है कि चारों ओर सूना दीखता है। ऋषियों की यह भूमि ऋषि-तत्त्व से रहित हो गई जैसी लगती है।

दुर्भाग्य एक और भी है कि स्वाध्याय के उपयुक्त साहित्य भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानें खोज मारने पर मुश्किल से ही कुछ पुस्तकें ऐसी मिलेंगी जो जीवन निर्माण के लिए आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करती हों। प्रेसों में ऐसा कूड़ा-कचरा दिन-रात छपता है, जिसे पढ़कर लोगों के दिमाग और भी अधिक खराब हों।

आज की परिस्थितियों में जो भी संभव हो, ऐसा हमें साहित्य तलाश करना चाहिए जो प्रकाश एवं प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता से संपन्न हो। उसे पढ़ने के लिए कम से कम एक घंटा निश्चित रूप से नियत करना चाहिए। धीरे-धीरे समझकर विचारपूर्वक उसे पढ़ना चाहिए। पढ़ने के बाद उन विचारों पर बराबर मनन करना चाहिए।

जब भी मस्तिष्क खाली रहे यह सोचना आरंभ कर देना चाहिए कि आज के स्वाध्याय में जो पढ़ा गया था, उस आदर्श तक पहुँचने के लिए हम प्रयत्न करें, जो कुछ सुधार संभव है, उसे किसी न किसी रूप में जल्दी ही आरंभ करें। श्रेष्ठ लोगों के चरित्रों को पढ़ना और वैसा ही गौरव स्वयं भी प्राप्त करने की बात सोचते रहना, मनन और चिंतन की दृष्टि से आवश्यक है।

जितनी अधिक देर तक मन में उच्च भावनाओं का प्रवाह बहता रहे उतना ही अच्छा है। ऐसा साहित्य हमारे लिए संजीवन बूटी का काम करेगा उसे पढ़ना और अपने अत्यंत प्राणप्रिय कामों में से एक बना लेना चाहिए। सुलझे हुए विचारों के सच्चे मार्गदर्शक न मिलने के अभाव की पूर्ति इस साहित्य से संभव है। आज उलझे हुए विचारों के लोग बहुत हैं। धर्म के नाम पर आलस्य, अकर्मण्यता, निराशा, दीनता, कर्त्तव्य की उपेक्षा, स्वार्थपरता, संकीर्णता की शिक्षा देने वाले सत्संगों से जितनी दूर रहा जाए, उतना ही कल्याण है।

कहीं से भी, किसी प्रकार से भी जीवन की समुचित बनाने वाले, सुलझे हुए उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरने का साधन जुटाना चाहिए। स्वाध्याय से, सत्संग से, मनन से, चिंतन से जैसे बन पड़े वैसे यह प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा मस्तिष्क उच्च विचारधारा में निमग्न रहे। यदि इस प्रकार के विचारों में मन लगने लगे, उनकी उपयोगिता समझ पड़ने लगे, उनको अपनाते हुए आनंद का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार कर ली गई।

### स्वाध्याय, नित्य करना ही चाहिए—

गीता में कहा गया है—“नहिं ज्ञानेन सदूरा पवित्रमिह विद्यते” अर्थात् इस संसार में ज्ञान से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। यदि हम इस संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु तलाश करना चाहें तो अंततः ‘ज्ञान’ को ही वह श्रेष्ठता की योग्यता एवं परिस्थितियों के व्यक्ति अत्यंत उच्चकोटि का स्थान प्राप्त करते हैं। ज्ञान को ही पारस्मणि कहा गया है। लोहा पारस को छूकर सोना बन जाता है या नहीं ? पारस कहीं है या नहीं ? यह बातें संदिग्ध हैं। पर ज्ञान रूपी पारस को स्पर्श कर तुच्छ श्रेणी के व्यक्ति ऊँचे से ऊँचे स्थान पर पहुँचे हैं, यह निर्विवाद सत्य है।

शरीर की दृष्टि से मनुष्य अल्पबुद्धि पशु-पक्षियों से भी गया बीता है। उनके शरीर में जो भागने, बोझ उठाने, उड़ने, सर्दी-गर्मी सहने, बीमार

न होने आदि की विशेषताएँ हैं, वे मनुष्य शरीर में नहीं है। फिर भी उन सबकी अपेक्षा अधिक साधन संपन्न हो सका इसका एक मात्र कारण उसका ज्ञान ही है। जब कभी किसी व्यक्ति का दिमाग खराब हो जाता है, ज्ञान शक्ति में अंतर आ जाता है, तो शरीर ज्यों का त्यों रहने पर भी उसकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती है। इसके विपरीत ज्ञानवान व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से गए बीते होने पर भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किए रहते हैं। ज्ञान की महिमा अपार है। गीताकार ने उसे सर्वश्रेष्ठ तत्त्व कहकर पुकारा तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है।

शारीरिक और मानसिक बनावट की दृष्टि से सभी मनुष्य लगभग एक से होते हैं। उनमें जो अंतर होता है उसे बहुत थोड़ा ही कहा जा सकता है किंतु आंतरिक स्थिति की विचार और विवेक की भिन्नता के कारण उनमें जो अंतर देखा जाता है वह असामान्य है। संसार में जितने ही महापुरुष हुए हैं, उन्होंने अपने अंतःकरण का विकास अवश्य ही किया। यदि वह न किया गया होता तो वे अन्य असंख्य साधन-सुविधाओं के होते हुए भी उस उच्च स्थिति के अधिकारी न हुए होते।

क्या सामाजिक, क्या व्यक्तिगत जीवन में—सर्वत्र विचार शक्ति का ही बोलबाला है जब अज्ञानपूर्ण कुविचारों की मात्रा बढ़ जाती है तो पाप, अनाचार, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थपरता, क्रोध, छल, शोषण, असंयम, तृष्णा, लोभ, विलासिता का साम्राज्य बढ़ता है। फलस्वरूप रोग, शोक, क्लेश, भय, चिंता एवं दीनता का अंधकार छा जाता है। यदि व्यक्तिगत जीवन में यह परिस्थिति पैदा हुई तो वह नरक बनेगा और यदि यह प्रवृत्तियाँ—सार्वजनिक, सामाजिक जीवन में बढ़ीं तो सारा समाज इन दुःख दूँदों में ग्रस्त होकर अधिष्ठन के सत्यानाशी मार्ग पर अग्रसर होगा। इसके विपरीत यदि सदज्ञान के आधार पर अंतःग्रदेश में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ीं—दया, प्रेम, उदारता, संयम, सदाचार, स्नेह, सहयोग एवं सेवा की भावनाएँ विकसित हुईं—तो चाहे व्यक्तिगत जीवन हो, चाहे सामाजिक जीवन, दोनों में हीं सुख-शांति, समृद्धि, सहयोग, संगठन, आरोग्य, मैत्री, सुरक्षा की स्वर्गीय परिस्थितियाँ स्वयमेव पैदा हो जाएँगी।

ज्ञान के दो अंग हैं एक शिक्षा दूसरा विद्या। शिक्षा वह है जो स्कूल कालेजों में पढ़ाई जाती है, जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, कलर्क, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोफेसर, अफसर आदि बनते हैं। यह जीविकोपार्जन एवं लोक व्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है। यह आवश्यक है

क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन में सुस्थिरता एवं उन्नति का मार्ग नहीं खुलता। पर इससे भी आवश्यक 'विद्या' है। जिस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहा जाता है। इसे प्राप्त करने का माध्यम स्कूल, कालेज नहीं वरन् 'स्वाध्याय' और सत्संग हैं। चिंतन और मनन से, सत्साहित्य पढ़ने से, सज्जनों के साथ रहने, उनके अभिवचन सुनने एवं कार्यकलाप देखने से विद्या का आविर्भाव होता है।

जिस ज्ञान को संसार का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ कहा गया है वह विद्या ज्ञान ही है। स्कूली ज्ञान तो करोड़ों मनुष्यों को है। उससे थोड़ा लौकिक विकास तो जरूर होता है पर आंतरिक महानता किसी की नहीं बढ़ती। आत्म निर्माण की, चरित्र गठन की, सत्प्रवृत्तियों की भावनाएँ जागत करने वाले सद्विचारों को ही सच्चा ज्ञान कहा जा सकता है। यही जीवन को सफल बनाने वाला सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है। इसे प्राप्त करने के लिए हम में से हर एक की शक्ति भर सत्संग के साधन जब भी उपलब्ध हों, सत्पुरुषों के साथ विचार-विनिमय एवं सान्निध्य जब भी संभव हो, तब उसका लाभ उठाना चाहिए, पर यह है बहुत कठिन, क्योंकि ऐसे अनेक सत्पुरुषों का एक साथ मिलना दुर्लभ है, जिनके विचारों में से उचित अंश को ग्रहण करके अपना ज्ञानकोष पूरा किया जा सके। कोई व्यक्ति सत्पुरुष होते हुए भी सर्वथा निर्भ्रांति नहीं होता। यदि उसके सभी विचारों को ठीक माना जाए तो उस सत्पुरुष में जो भ्रांति थी वह भी अपने पल्ले बँध जाएगी। भगवान् बुद्ध अत्यंत उच्चकोटि के त्यागी तपस्वी महापुरुष थे, उनकी अधिकांश शिक्षाएँ बड़ी उत्तम हैं पर ईश्वर को न मानने का उनका सिद्धांत उचित नहीं माना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति बुद्ध भगवान् पर अनन्य श्रद्धा करके उनके विचारों में से उचित-अनुचित की काट-छाँट न करे तो उसे अनीश्वरवादी बनना पड़ेगा और उस मान्यता के दुष्परिणामों को भी भोगना पड़ेगा। संसार का हर व्यक्ति अपूर्ण है। इसलिए श्रेष्ठ पुरुषों के सब विचार निर्भ्रांत ही होंगे यह नहीं कहा जा सकता। उनकी वार्ता में से उपयोगी, बुद्धि संगत और देशकाल परिस्थिति के अनुरूप विचारों को छाँटकर ग्रहण किया जाए इसके लिए आवश्यक है कि सत्संग के लिए अनेक सत्पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त हो। यह कठिन है क्योंकि ऐसे श्रेष्ठ विचारशील सत्पुरुष न तो बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं न वे अपने सभीप ही रहते हैं। फिर वे इतने कार्य व्यस्त भी होते

हैं, कि हर जिज्ञासु के लिए अभीष्ट सम्मति दे सकना उनके लिए संभव नहीं होता। इसलिए सत्संग को यदाकदा प्राप्त होते रह सकने वाला अवसर ही माना जाएगा। ज्ञान लाभ का उद्देश्यपूर्ण करने वाला सर्वसुलभ स्वाध्याय ही है।

संसार के सर्वश्रेष्ठ तत्त्व 'ज्ञान' को प्राप्त करके जीवन सफल बनाने—उसे श्रेष्ठ दिशा में विकसित करने के लिए स्वाध्याय ही प्रधान माध्यम है, इसलिए स्वाध्याय को एक आवश्यक धर्म कर्तव्य माना गया है। शास्त्र कहता है—'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद न करो और 'अहरहस्वाध्यायमेध्येतत्वः' अर्थात् दिन-रात स्वाध्याय में लगे रहो। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि—'भावन्तः वा इमां पृथिवी वितेन पूर्णाददल्लोकं जयति त्रिस्तावन्त जयतिभूयां संवाक्षम्य एवम् विज्ञान अहरहस्वाध्यायामेधीते।' अर्थात् जितना पुण्य धन-धान्य से पूर्ण इस समस्त पृथ्वी को दान देने से मिलता है, उसका तीन गुना पुण्य तथा उससे भी अधिक पुण्य स्वाध्याय करने वाले को प्राप्त होता है। इस कथन पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। भावनाओं को प्रेरणा देने का प्रमुख आधार स्वाध्याय ही वह तथ्य माना गया है, जिसमें प्रेरित होकर मनुष्य के विचार और कार्य सन्मार्ग की दिशा में विकसित होते हैं और यही विकास क्रम अनंतः अक्षय पुण्य फल प्राप्त होने का हेतु बनता है।

शरीर, वस्त्र, मकान आदि की सफाई नित्य करनी पड़ती है क्योंकि नित्य ही उन पर मैल जमता रहता है। इसी प्रकार मन पर भी संसार के बुरे वातावरण का मैल और कुप्रभाव निरंतर पड़ता रहता है। उसकी सफाई के लिए सत्संग और स्वाध्याय की बुहारी लगाने की नित्य ही आवश्यकता होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने भोजन, स्नान, शयन आदि की भाँति ही स्वाध्याय को भी नित्य कर्म माना है। पानी को फैलाते ही वह तेजी से नीचे की ओर अपने आप बहने लगता है। उसी प्रकार मन का स्वभाव भी नीच कर्मों की ओर आकर्षित होता है। यदि उसे न रोका जाए तो वह पशु-प्रवृत्तियों की ओर ही बढ़ेगा। पानी को ऊपर ले जाना होता है तो रस्सी, बाल्टी, पंप आदि का प्रयोग करना पड़ता है, तब कहीं वह ऊपर को बढ़ाया जा सकता है। स्वाध्याय को वह व्यवधान कहा जा सकता है जो मन

रूपी पानी को कुमार्ग की ओर बहने से रोकता है। आत्म शोधन और आत्म निर्माण का सबसे प्रधान विधान 'स्वाध्याय' ही माना गया है। इसी से परमात्मा की प्राप्ति भी होती है। महर्षि व्यास का कथन है—'स्वाध्याय योग सभ्यया परमात्मा प्रकाशते' अर्थात् स्वाध्याय युक्त साधना से ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

हमें अपने व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिए स्वाध्याय को प्रमुख आधार मानना पड़ेगा और इसे जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में जन-जन को हृदयंगम कराना पड़ेगा। जो अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ हमारे वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में घर कर गई हैं। उनकी हानियों को भली प्रकार समझने एवं त्यागने के लिए प्रेरणा देने स्वाध्याय की शक्ति को प्रमुख उपाय मानना होगा। इसी प्रकार जो सद्भावनाएँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ विकसित की जानी आवश्यक हैं, उनकी उपयोगिता समझने एवं ग्रहण करने के लिए उत्साह उत्पन्न करने का कार्य भी स्वाध्याय की आदत को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने से ही संभव हो सकेगा।

हमें से प्रत्येक को स्वाध्याय के लिए नित्य कुछ समय नियमित रूप से निकालना चाहिए। जिस प्रकार स्नान के लिए एक समय नियत रहता है और रोज ही उस समय नहाया जाता है, उसी प्रकार नित्य स्वाध्याय के लिए भी एक समय नियत रहना चाहिए। यों पढ़ने को तो तरह-तरह की चीजें लोग पढ़ते हैं—पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है। स्वाध्याय वही कहा जाएगा जो हमारी जीवन समस्याओं पर आंतरिक उलझनों पर प्रकाश डालता है और मानवता को उज्ज्वल करने वाली सत्प्रवृत्तियों को अपनाने की प्रेरणा देता है। इसीलिए स्वाध्याय एवं सत्संग दोनों पर हमारे मनीषी आग्रहपूर्वक बल देते रहे हैं। उद्देश्य एक ही है, भीतर की सत्प्रवृत्तियों को सत्प्रेरणा मिले, शक्ति मिले, चिंतन-मनन की प्रक्रिया सही दिशा में आगे बढ़े और मनुष्य के भीतर छिपे देवत्व का अभिवर्धन हो तथा उसके चारों ओर स्वर्गीय वातावरण की सृष्टि संभव हो। स्वाध्याय, सत्संग एवं चिंतन-मनन की सार्थकता उसी श्रेष्ठता की उपलब्धि में है।

